अध्याय ३

श्री चैतन्य महाप्रभु के प्राकट्य के बाह्य कारण

इस अध्याय में लेखक ने श्री चैतन्य महाप्रभु के अवतरण के बाह्य कारणों की पूर्ण व्याख्या की है। पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी लीलाएँ प्रदर्शित करने के बाद यही उचित समझा कि वे एक भक्त के रूप में अवतरित हों, जिससे वे अपने एवं अपने सेवकों, मित्रों, माता-पिता तथा प्रेमिकाओं के मध्य सेवा तथा प्रेम के दिव्य रस के विनिमय की स्वयं व्याख्या कर सकें। वैदिक साहित्य के अनुसार इस कलियुग में मनुष्य का सर्वप्रमुख धर्म *नाम-सङ्कीर्तन* या भगवान् के पवित्र नाम का सामूहिक कीर्तन करना है। इस युग के अवतार इसी विधि का विशेष उपदेश देते हैं, किन्तु परमेश्वर एवं उनके भक्तों के बीच चार मुख्य प्रकार के प्रेम-व्यापारों में सम्पन्न होने वाली गुह्य प्रेमाभक्ति की व्याख्या केवल स्वयं कृष्ण ही कर सकते हैं। इसीलिए स्वयं भगवान् कृष्ण अपने पूर्ण अंशों समेत श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट हुए। जैसाकि इस अध्याय में बतलाया गया है, इसी निमित्त भगवान् कृष्ण नवद्वीप में श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के रूप में स्वयं प्रकट हुए।

यहाँ पर कृष्णदास कविराज ने चैतन्य महाप्रभु की पहचान स्वयं श्रीकृष्ण के रूप में स्थापित करने के लिए *श्रीमद्भागवत* तथा अन्य शास्त्रों से पर्याप्त प्रामाणिक साक्ष्य प्रस्तुत किये हैं। उन्होंने भगवान् चैतन्य के शारीरिक लक्षणों का वर्णन किया है, जो केवल भगवान् के ही शरीर में दृष्टिगोचर होते हैं और इस तरह उन्होंने यह सिद्ध किया है कि श्री चैतन्य अपने निजी पार्षदों—श्री

नित्यानन्द, अद्वैत, गदाधर, श्रीवास तथा अन्य भक्तों—के साथ हरे-कृष्ण-कीर्तन की विशेष महत्ता का उपदेश देने के लिए प्रकट हुए। भगवान् चैतन्य का आविर्भाव महत्त्वपूर्ण होने के साथ गुह्य भी है। वे केवल शुद्ध भक्तों द्वारा तथा केवल शुद्ध भक्तियोग की प्रक्रिया द्वारा समझे जा सकते हैं। भगवान् ने अपने आपको भक्त के रूप में प्रस्तुत करके भगवान् के रूप में अपनी पहचान को छिपाने का प्रयास किया, किन्तु उनके शुद्ध भक्तों ने उन्हें उनके विशेष लक्षणों से पहचान लिया। वेद तथा पुराण श्री चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव की भविष्यवाणी करते हैं, तो भी कभी-कभी वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रच्छन्न अवतार कहे जाते हैं।

अद्वैत आचार्य श्री चैतन्य महाप्रभु के पिता के समकालीन थे। उन्हें इस बात का दुःख था कि भगवान् कृष्ण का आविर्भाव हो जाने के बाद भी संसार की हालत खराब थी, क्योंकि कृष्ण-भक्ति में किसी को रुचि नहीं थी। लोग भगवान् को इस हद तक भूल चुके थे कि अद्वैत प्रभु को विश्वास हो चुका था कि भगवद्भक्ति के विषय में लोगों को स्वयं कृष्ण के अतिरिक्त अन्य कोई प्रशिक्षित नहीं कर सकता। इसीलिए अद्वैत आचार्य ने भगवान् कृष्ण से प्रार्थना की कि वे चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट हों। उन्होंने तुलसीदल तथा गंगाजल अर्पित करते हुए भगवान् से प्रकट होने के लिए व्याकुल भाव से प्रार्थना की। भगवान् अपने शुद्ध भक्तों पर तुष्ट होकर उन्हें प्रसन्न करने के लिए अवतरित होते हैं। इस तरह अद्वैत आचार्य से प्रसन्न होकर श्री चैतन्य महाप्रभु प्रकट हुए।

श्री-चैतन्य-प्रभुं वन्दे यत्पादाश्रय-वीर्यतः ।
सङ्गृह्णात्याकर-व्रातादज्ञः सिद्धान्त-सन्मणीन् ॥ १ ॥

श्री-चैतन्य-प्रभुम्—श्री चैतन्य महाप्रभु को; **वन्दे**—मैं सादर प्रणाम करता हूँ; **यत्**—जिनके; **पाद-आश्रय**—चरणकमलों के आश्रय के; **वीर्यतः**—बल से; **सङ्गृह्णाति**—एकत्रित करता है; **आकर-व्रातात्**—शास्त्र रूपी खानों के समूह से; **अज्ञः**—एक अज्ञानी; **सिद्धान्त**—सिद्धान्त के; **सत्-मणीन्**—सर्वोत्कृष्ट रत्न।

अनुवाद

मैं श्री चैतन्य महाप्रभु को सादर नमस्कार करता हूँ। उनके चरणकमलों की शरण के प्रभाव से मूर्ख से मूर्ख व्यक्ति भी प्रामाणिक शास्त्रों की खानों में से सैद्धान्तिक सत्य के मूल्यवान रत्नों को एकत्र कर सकता है।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।
जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥२॥

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।
जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥ २॥

जय जय—जय हो; **श्री-चैतन्य**—श्री चैतन्य महाप्रभु की; **जय**—जय हो; **नित्यानन्द**—भगवान् नित्यानन्द की; **जय**—जय हो; **अद्वैत-चन्द्र**—अद्वैताचार्य की; **जय**—जय हो; **गौर-भक्त-वृन्द**—चैतन्य महाप्रभु के सभी भक्तों की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो! अद्वैतचन्द्र प्रभु की जय हो और श्री चैतन्य महाप्रभु के समस्त भक्तों की जय हो!

तृतीय श्लोकेर अर्थ कैल विवरण ।
चतुर्थ श्लोकेर अर्थ शुन भक्त-गण ॥३॥

तृतीय श्लोकेर अर्थ कैल विवरण ।
चतुर्थ श्लोकेर अर्थ शुन भक्त-गण ॥ ३॥

तृतीय—तीसरे; **श्लोकेर**—श्लोक का; **अर्थ**—अर्थ; **कैल**—किया; **विवरण**—विवरण; **चतुर्थ**—चौथे; **श्लोकेर**—श्लोक का; **अर्थ**—अर्थ; **शुन**—कृपया सुनो; **भक्त-गण**—हे भक्तगण।

अनुवाद

मैं तीसरे श्लोक का तात्पर्य बता चुका हूँ। हे भक्तजन, अब कृपा करके ध्यानपूर्वक चौथे श्लोक का अर्थ सुनें।

अनर्पित-चरीं चिराच्करुणयावतीर्णः कलौ
समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वल-रसां स्व-भक्ति-श्रियम् ।
हरिः पुरट-सुन्दर-द्युति-कदम्ब-सन्दीपितः
सदा हृदय-कन्दरे स्फुरतु वः शची-नन्दनः ॥४॥

अनर्पित-चरीं चिरात्करुणयावतीर्णः कलौ
समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वल-रसां स्व-भक्ति-श्रियम् ।
हरिः पुरट-सुन्दर-द्युति-कदम्ब-सन्दीपितः
सदा हृदय-कन्दरे स्फुरतु वः शची-नन्दनः ॥४॥

अनर्पित—नहीं दिया; **चरीम्**—पहले; **चिरात्**—दीर्घ काल से; **करुणया**—अहैतुकी दया से; **अवतीर्णः**—अवतरित हुए; **कलौ**—कलियुग में; **समर्पयितुम्**—प्रदान करने के लिए; **उन्नत**—उन्नत; **उज्ज्वल-रसाम्**—उज्जवल माधुर्य रस; **स्व-भक्ति**—अपनी भक्ति का; **श्रियम्**—खजाना; **हरिः**—परमेश्वर; **पुरट**—सुवर्ण से; **सुन्दर**—अधिक सुन्दर; **द्युति**—द्युति; **कदम्ब**—समूह; **सन्दीपितः**—प्रकाशित; **सदा**—सदैव; **हृदय-कन्दरे**—हृदय की गहराई में; **स्फुरतु**—वे प्रकट हुए; **वः**—आपका; **शची-नन्दनः**—माता शची का पुत्र।

अनुवाद

"वे भगवान्, जो श्रीमती शचीदेवी के पुत्र के रूप में विख्यात हैं, आपके हृदय की गहराई में दिव्य स्थान ग्रहण करें। वे पिघले सोने की देदीप्यमान द्युति से युक्त होकर इस कलियुग में अपनी अहैतुकी कृपा से भक्ति का सर्वोच्च रस—माधुर्य रस—प्रदान करने के लिए अवतरित हुए हैं, जिसे इसके पूर्व अन्य किसी अवतार ने प्रदान नहीं किया है।"

तात्पर्य

यह श्लोक *विदग्ध-माधव* (१.२) नामक नाट्यकृति का है, जिसका संकलन एवं सम्पादन श्रील रूप गोस्वामी द्वारा किया गया है।

पूर्ण भगवान्कृष्ण व्रजेन्द्र-कुमार ।
गोलोके व्रजेर सह नित्य विहार ॥५॥

पूर्ण भगवान्कृष्ण व्रजेन्द्र-कुमार ।
गोलोके व्रजेर सह नित्य विहार ॥५॥

पूर्ण—पूर्ण; **भगवान्**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **व्रजेन्द्र-**

कुमार—व्रजेन्द्र नन्दन; **गोलोके**—गोलोक में; **व्रजेर सह**—व्रजधाम सहित; **नित्य**—नित्य; **विहार**—लीलाएँ।

अनुवाद

व्रजराज के पुत्र श्रीकृष्ण परम भगवान् हैं। वे अपने सनातन धाम गोलोक में, जिसमें व्रजधाम भी सम्मिलित है, अपनी दिव्य लीलाओं का आनन्द लेते हैं।

तात्पर्य

पिछले अध्याय में यह सिद्ध किया जा चुका है कि व्रजेन्द्रनन्दन कृष्ण छः ऐश्वर्यों से युक्त पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। वे अपने लोक, गोलोक में विविध दिव्य ऐश्वर्यों का सदैव भोग करते हैं। दिव्य ग्रह कृष्ण-लोक में भगवान् की शाश्वत लीलाएँ *अप्रकट* कहलाती हैं, क्योंकि वे बद्धजीवों की पहुँच के बाहर होती हैं। भगवान् कृष्ण सदैव सर्वत्र उपस्थित रहते हैं, किन्तु जब वे हमारी आँखों के समक्ष नहीं होते, तो वे *अप्रकट* कहलाते हैं।

ব্রহ্মার এক দিনে তিঁহো এক-বার ।
অবতীর্ণ হঞা করেন প্রকট বিহার ॥৬॥

ব্রহ্মার এক দিনে তিঁহো এক-বার ।
অবতীর্ণ হঞা করেন প্রকট বিহার ॥ ৬ ॥

ব্রহ্মার—ब्रह्माजी के; **एक**—एक; **दिने**—दिन में; **तिंहो**—वे; **एक-बार**—एक बार; **अवतीर्ण**—अवतरित; **हञा**—होकर; **करेन**—करते हैं; **प्रकट**—प्रकट; **विहार**—लीलाएँ।

अनुवाद

वे ब्रह्मा के एक दिन में एक ही बार इस जगत् में अपनी दिव्य लीलाएँ प्रकट करने के लिए अवतरित होते हैं।

সত্য, ত্রেতা, দ্বাপর, কলি, চারি-যুগ জানি ।
সেই চারি-যুগে দিব্য এক-যুগ মানি ॥৭॥

सत्य, त्रेता, द्वापर, कलि, चारि-युग जानि ।
सेइ चारि-युगे दिव्य एक-युग मानि ॥ ७ ॥

सत्य—सत्य; **त्रेता**—त्रेता; **द्वापर**—द्वापर; **कलि**—कलि; **चारि-युग**—चतुर्युग; **जानि**—हम जानते हैं; **सेइ**—ये; **चारि-युगे**—चार युगों में; **दिव्य**—दिव्य; **एक-युग**—एक युग; **मानि**—हम मानते हैं।

अनुवाद

हम जानते हैं कि युग चार हैं, यथा सत्य, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग। ये चारों मिलकर एक दिव्य युग की रचना करते हैं।

एकात्तर चतुर्युगे एक मन्वन्तर ।
चौद्द मन्वन्तर ब्रह्मार दिवस भितर ॥ ८॥

एकात्तर चतुर्युगे एक मन्वन्तर ।
चौद्द मन्वन्तर ब्रह्मार दिवस भितर ॥ ८॥

एकात्तर—इकहत्तर; **चतुः-युगे**—चतुर्युगों में; **एक**—एक; **मनु-अन्तर**—मन्वन्तर; **चौद्द**—चौदह; **मनु-अन्तर**—मनु का काल; **ब्रह्मार**—ब्रह्माजी का; **दिवस**—एक दिन; **भितर**—के भीतर।

अनुवाद

एकहत्तर दिव्य युग मिलकर एक मन्वन्तर बनाते हैं। ब्रह्मा के एक दिन में चौदह मन्वन्तर होते हैं।

तात्पर्य

मन्वन्तर एक मनु द्वारा शासन करने की अवधि है। ब्रह्मा के जीवन का एक दिन (बारह घंटे) चौदह मनुओं के शासन काल के बराबर है और ब्रह्मा की रात्रि भी इतनी ही बड़ी होती है। ये गणनाएँ *सूर्य-सिद्धान्त* नामक प्रामाणिक खगोल-विज्ञान की पुस्तक में दी हुई हैं। इस पुस्तक का बंगाली अनुवाद खगोल विज्ञान तथा गणित के महान् पंडित बिमल प्रसाद दत्त ने किया। यही बाद में भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी कहलाये और ये ही हमारे कृपालु गुरु थे। *सूर्य-सिद्धान्त* के अनुवाद के लिए इन्हें सिद्धान्त सरस्वती पदवी से विभूषित किया गया और जब उन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया, तो उनके नाम के साथ गोस्वामी महाराज की पदवी जुड़ गई।

'वैवस्वत'-नाम एই সপ্তম মন্বন্তর ।
সাতাইশ চতুর্যুগ তাহার অন্তর ॥ ৯॥

'वैवस्वत'-नाम एइ सप्तम मन्वन्तर ।
साताइश चतुर्य्युग ताहार अन्तर ॥ ९ ॥

वैवस्वत-नाम—वैवस्वत नामक; **एइ**—यह; **सप्तम**—सातवाँ; **मनु-अन्तर**—मन्वन्तर; **साताइश**—सत्ताइस; **चतुः-युग**—चतुर्युग; **ताहार**—उनके; **अन्तर**—कालान्तर।

अनुवाद

वर्तमान मनु सातवें मनु हैं और ये वैवस्वत (विवस्वान के पुत्र) कहलाते हैं। अब तक उनकी आयु के सत्ताइस दिव्य युग (२७ × ४३,२०,००० सौर वर्ष) बीत चुके हैं।

तात्पर्य

चौदह मनुओं के नाम इस प्रकार हैं—(१) स्वायम्भुव, (२) स्वारोचिष, (३) उत्तम, (४) तामस, (५) रैवत, (६) चाक्षुष, (७) वैवस्वत, (८) सावर्णि, (९) दक्ष-सावर्णि, (१०) ब्रह्म-सावर्णि, (११) धर्म-सावर्णि, (१२) रुद्रपुत्र (रुद्र-सावर्णि), (१३) रौच्य या देव-सावर्णि तथा (१४) भौत्यक या इन्द्र-सावर्णि।

अष्टाविंश चतुर्य्युगे द्वापरेर शेषे ।
व्रजेर सहिते हय कृष्णेर प्रकाशे ॥ १० ॥

अष्टाविंश चतुर्य्युगे द्वापरेर शेषे ।
व्रजेर सहिते हय कृष्णेर प्रकाशे ॥ १० ॥

अष्टाविंश—अट्ठाइसवें; **चतुः-युगे**—चतुर्युग में; **द्वापरेर**—द्वापर युग के; **शेषे**—अन्त में; **व्रजेर सहिते**—व्रज सहित; **हय**—है; **कृष्णेर**—भगवान् कृष्ण का; **प्रकाशे**—प्रकट होना।

अनुवाद

अट्ठाइसवें दिव्य युग के द्वापर युग के अन्त में भगवान् कृष्ण अपने शाश्वत व्रजधाम के सम्पूर्ण साज-सामान के साथ पृथ्वी पर प्रकट होते हैं।

तात्पर्य

अब वैवस्वत मनु का शासन काल है, जिसमें चैतन्य महाप्रभु प्रकट होते हैं। सर्वप्रथम भगवान् कृष्ण अट्ठाइसवें दिव्य-युग के द्वापर युग के अन्त में प्रकट होते हैं और तब उसी दिव्य-युग के कलियुग में चैतन्य महाप्रभु प्रकट होते

हैं। भगवान् कृष्ण तथा भगवान् चैतन्य ब्रह्मा के प्रत्येक दिन में एक बार अर्थात् चौदह मन्वंतरों में एक बार प्रकट होते हैं। प्रत्येक मन्वन्तर की अवधि ७१ दिव्य-युग होती है।

ब्रह्मा के दिन के प्रारम्भ से, जो ४,३२,००,००,००० वर्ष का होता है, छह मनु प्रकट होकर लुप्त हो जाते हैं, तब भगवान् कृष्ण प्रकट होते हैं। इस प्रकार भगवान् कृष्ण के प्रादुर्भाव के पूर्व ब्रह्मा के एक दिन के १,९७,५३,२०,००० वर्ष बीत चुके होते हैं। यह सौर वर्षों के आधार पर की गई खगोल-विज्ञान की गणना है।

दास्य, सख्य, वात्सल्य, शृङ्गार—चारि रस ।
चारि भावेर भक्त यत कृष्ण तार वश ॥ ११ ॥

दास्य, सख्य, वात्सल्य, शृङ्गार—चारि रस ।
चारि भावेर भक्त यत कृष्ण तार वश ॥ ११ ॥

दास्य—दास्य; **सख्य**—सख्य; **वात्सल्य**—वात्सल्य; **शृङ्गार**—शृंगार, माधुर्य प्रेम; **चारि**—चारों; **रस**—रस; **चारि**—चारों; **भावेर**—भावों के; **भक्त**—भक्तगण; **यत**—जितने भी हों; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **तार**—उनसे; **वश**—अभिभूत हो जाते हैं।

अनुवाद

दास्य (सेवक भाव), सख्य (मैत्री), वात्सल्य (माता-पिता का स्नेह) तथा शृंगार (दाम्पत्य प्रेम)—ये चार दिव्य रस हैं। जो भक्त इन चारों रसों का आस्वादन करते हैं, भगवान् कृष्ण उनके वश में रहते हैं।

तात्पर्य

दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा *शृङ्गार*—ये भगवान् की प्रेममयी सेवा के दिव्य रस हैं। इस श्लोक में *शान्त रस* का उल्लेख नहीं हुआ है, क्योंकि यद्यपि शान्त रस में मनुष्य परम सत्य को महान् मानता है, किन्तु वह इस भाव से ऊपर नहीं उठ पाता। शान्त रस भौतिकतावादी दार्शनिकों के लिए बहुत ही आकर्षक भाव है, किन्तु ऐसा आदर्श भाव मात्र शुभारम्भ होता है। आध्यात्मिक जगत् में यह निम्नतम सम्बन्ध होता है। शान्त रस को अधिक महत्त्व नहीं दिया गया, क्योंकि ज्ञाता तथा ज्ञेय में थोड़ा-सा परिचय होते ही सक्रिय प्रेमपूर्ण

दिव्य आदान-प्रदान शुरू हो जाता है। दास्य रस कृष्ण तथा उनके भक्तों के बीच आधारभूत सम्बन्ध है, अतएव इस श्लोक में दास्य को भक्ति की प्रथम अवस्था माना गया है।

दास-सखा-पिता-माता-कान्ता-गण लञा ।
व्रजे क्रीड़ा करे कृष्ण प्रेमाविष्ट हञा ॥ १२॥

दास-सखा-पिता-माता-कान्ता-गण लञा ।
व्रजे क्रीड़ा करे कृष्ण प्रेमाविष्ट हञा ॥ १२॥

दास—दास; **सखा**—सखा; **पिता-माता**—पिता माता; **कान्ता-गण**—प्रेमिकाओं; **लञा**—लेकर; **व्रजे**—व्रज में; **क्रीड़ा करे**—क्रीड़ा करते हैं; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **प्रेम-आविष्ट**—प्रेम में लीन; **हञा**—होकर।

अनुवाद

ऐसे दिव्य प्रेम में निमग्न होकर भगवान् श्रीकृष्ण अपने समर्पित सेवकों, मित्रों, माता-पिता तथा प्रेमिकाओं के साथ व्रज में आनन्द का आस्वादन करते हैं।

तात्पर्य

परम भगवान् श्रीकृष्ण का अवतरण अत्यन्त अर्थपूर्ण है। *भगवद्गीता* में कहा गया है कि जो व्यक्ति श्रीकृष्ण के अवतरण एवं उनके विविध कार्यकलापों से सम्बन्धित सत्य को जान लेता है, वह तुरन्त मुक्त हो जाता है और वह अपने वर्तमान भौतिक शरीर को त्यागने के बाद फिर जन्म-मृत्यु के चक्र में नहीं पड़ता। दूसरे शब्दों में, जो कृष्ण को वास्तव में समझ लेता है, उसका जीवन पूर्ण बन जाता है। अपूर्ण जीवन तो इस भौतिक जगत् में भोगना पड़ता है। इस जगत् में हर एक से हमारे पाँच प्रकार के सम्बन्ध होते हैं। ये हैं—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य। भौतिक जगत् के ये पाँच सम्बन्ध दिव्य प्रकृति में भगवान् के साथ होने वाले सम्बन्धों के विकृत प्रतिबिम्ब होते हैं। परम पुरुष श्रीकृष्ण इन पाँच शाश्वत सम्बन्धों को दोबारा जागृत करने के लिए प्रकट होते हैं। इस प्रकार वे व्रज में अपनी दिव्य लीलाएँ प्रदर्शित करते हैं, जिससे लोग उन लीलाओं की ओर आकृष्ट हों और अपने असत्य संसारी सम्बन्धों को

त्याग दें। अपने ऐसे सभी कार्यकलापों को दिखलाने के बाद भगवान् अन्तर्धान हो जाते हैं।

यथेष्ट विहरि' कृष्ण करे अन्तर्धान ।
अन्तर्धान करि' मने करे अनुमान ॥ १३॥

यथेष्ट विहरि' कृष्ण करे अन्तर्धान ।
अन्तर्धान करि' मने करे अनुमान ॥ १३॥

यथा-इष्ट—यथेष्ठ; **विहरि'**—विहार करके; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **करे**—करते हैं; **अन्तर्धान**—अन्तर्धान; **अन्तर्धान करि'**—अन्तर्धान होकर; **मने**—मन में; **करे**—वे करते हैं; **अनुमान**—अनुमान।

अनुवाद

जब तक इच्छा होती है, भगवान् कृष्ण अपनी दिव्य लीलाओं का आस्वादन करते हैं और पुनः अन्तर्धान हो जाते हैं। किन्तु अन्तर्धान होने के बाद वे इस प्रकार सोचते हैं :

चिर-काल नाहि करि प्रेम-भक्ति दान ।
भक्ति विना जगतेर नाहि अवस्थान ॥ १४॥

चिर-काल नाहि करि प्रेम-भक्ति दान ।
भक्ति विना जगतेर नाहि अवस्थान ॥ १४॥

चिर-काल—दीर्घ काल तक; **नाहि करि**—मैंने नहीं किया; **प्रेम-भक्ति**—प्रेम भक्ति; **दान**—दान; **भक्ति**—भक्ति; **विना**—बिना; **जगतेर**—जगत् का; **नाहि**—नहीं; **अवस्थान**—अस्तित्व।

अनुवाद

"दीर्घ काल से मैंने अपनी अनन्य प्रेमाभक्ति का दान विश्व के निवासियों को नहीं दिया। ऐसी प्रेममयी अनुरक्ति के बिना भौतिक जगत् का अस्तित्व व्यर्थ है।

तात्पर्य

भगवान् कदाचित् ही शुद्ध दिव्य प्रेम प्रदान करते हैं, किन्तु सकाम कर्मों

और अनुभवसिद्ध चिंतन से रहित ऐसे शुद्ध भगवत्प्रेम के बिना व्यक्ति जीवन में पूर्णता प्राप्त नहीं कर सकता।

सकल जगते मोरे करे विधि-भक्ति ।
विधि-भक्त्ये व्रज-भाव पाइते नाहि शक्ति ॥ १५॥

सकल जगते मोरे करे विधि-भक्ति ।
विधि-भक्त्ये व्रज-भाव पाइते नाहि शक्ति ॥ १५॥

सकल—सब; **जगते**—ब्रह्माण्ड में; **मोरे**—मुझे; **करे**—वे करते हैं; **विधि-भक्ति**—विधिवत् भक्ति; **विधि-भक्त्ये**—विधिवत् भक्ति से; **व्रज-भाव**—व्रज के निवासियों के भाव; **पाइते**—पाने के लिए; **नाहि**—नहीं; **शक्ति**—शक्ति।

अनुवाद

"संसार में शास्त्रों के निर्देशानुसार सर्वत्र मेरी पूजा की जाती है। किन्तु ऐसे विधि-विधानों का पालन करने मात्र से व्रजभूमि के भक्तों के प्रेमभावों को प्राप्त नहीं किया जा सकता।

ऐश्वर्य-ज्ञानेते सब जगत्मिश्रित ।
ऐश्वर्य-शिथिल-प्रेमे नाहि मोर प्रीत ॥ १६॥

ऐश्वर्य-ज्ञानेते सब जगत्मिश्रित ।
ऐश्वर्य-शिथिल-प्रेमे नाहि मोर प्रीत ॥ १६॥

ऐश्वर्य-ज्ञानेते—ऐश्वर्यों के ज्ञान से; **सब**—सब; **जगत्**—जगत्; **मिश्रित**—मिलाजुला; **ऐश्वर्य-शिथिल-प्रेमे**—ऐश्वर्य के कारण निर्बल प्रेम को; **नाहि**—नहीं है; **मोर**—मेरी; **प्रीत**—प्रीति।

अनुवाद

"मेरे ऐश्वर्य को जानते हुए सारा संसार मुझे भय एवं सम्मान की दृष्टि से देखता है। किन्तु ऐसे सम्मान से शिथिल हुई भक्ति मुझे आकृष्ट नहीं करती।

तात्पर्य

भगवान् कृष्ण ने प्रकट होने के बाद सोचा कि उन्होंने तो दास्य, सख्य,

वात्सल्य एवं माधुर्य रसों में भक्तों के साथ अपने दिव्य व्यवहारों का वितरण किया ही नहीं। कोई भी व्यक्ति वैदिक साहित्य से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के विज्ञान को समझ सकता है और इस तरह उनका भक्त बन सकता है और वह शास्त्रों में वर्णित विधि-विधानों के अनुसार उनकी पूजा कर सकता है, किन्तु इस तरह से वह यह नहीं जान सकता कि व्रजभूमि के निवासियों द्वारा कृष्ण किस प्रकार सेवित होते हैं। शास्त्रों में उल्लिखित विधि-विधानों को सम्पन्न कर लेने से ही कोई वृन्दावन में भगवान् के आचार-व्यवहारों को नहीं समझ सकता। शास्त्रों के निर्देशों का पालन करके कोई भले ही भगवान् की महिमाओं को समझने में आगे बढ़ जाये, किन्तु इस तरह वह उनसे व्यक्तिगत व्यवहार करने का अवसर प्राप्त नहीं कर सकता। भगवान् की उत्कृष्ट महिमाओं को समझने में अधिक ध्यान देने से भगवान् के साथ व्यक्तिगत प्रेम व्यवहार स्थापित करने के अवसर कम हो जाते हैं। ऐसे प्रेम व्यवहार के सिद्धान्तों का पाठ पढ़ाने के लिए ही भगवान् ने श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट होने का निश्चय किया।

ঐশ্বর্য-জ্ঞানে বিধি-ভজন করিয়া ।
বৈকুণ্ঠকে যায় চতুর্বিধ মুক্তি পাঞা ॥ ১৭ ॥

ऐश्वर्य-ज्ञाने विधि-भजन करिया ।
वैकुण्ठके याय चतुर्विध मुक्ति पाञा ॥ १७ ॥

ऐश्वर्य-ज्ञाने—ऐश्वर्यों के ज्ञान में; **विधि**—विधि-विधान के अनुसार; **भजन**—पूजा; **करिया**—करना; **वैकुण्ठके**—वैकुण्ठ को; **याय**—वे जाते हैं; **चतुः-विध**—चार प्रकार की; **मुक्ति**—मुक्ति; **पाञा**—पाकर।

अनुवाद

"भय तथा सम्मान में ऐसी वैधी भक्ति करके मनुष्य वैकुंठ जा सकता है और चार प्रकार की मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

সার্ষ্টি, সারূপ্য, আর সামীপ্য, সালোক্য ।
সাযুজ্য না লয় ভক্ত যাতে ব্রহ্ম-ঐক্য ॥ ১৮ ॥

सार्ष्टि, सारूप्य, आर सामीप्य, सालोक्य ।
सायुज्य ना लय भक्त ग्राते ब्रह्म-ऐक्य ॥ १८ ॥

सार्ष्टि—भगवान् के बराबर ऐश्वर्य; **सारूप्य**—भगवान् जैसा स्वरूप; **आर**—और; **सामीप्य**—भगवान् के साथ निजी संगति; **सालोक्य**—वैकुण्ठ ग्रह पर निवास; **सायुज्य**—भगवान् से एकता; **ना लय**—वे स्वीकार नहीं करते; **भक्त**—भक्तगण; **ग्राते**—से; **ब्रह्म-ऐक्य**—ब्रह्म से ऐक्य।

अनुवाद

"ये मुक्तियाँ हैं—सार्ष्टि (भगवान् तुल्य ऐश्वर्य की प्राप्ति), सारूप्य (भगवान् जैसा ही रूप प्राप्त करना), सामीप्य (भगवान् का निजी पार्षद बनना) तथा सालोक्य (वैकुण्ठ ग्रह पर निवास करना)। किन्तु भक्तगण सायुज्य मुक्ति को कभी स्वीकार नहीं करते, क्योंकि यह ब्रह्म से तादात्म्य है।

तात्पर्य

जो लोग शास्त्रों में उल्लिखित अनुष्ठानों के अनुसार भक्ति में लगे रहते हैं, उन्हें ये विभिन्न प्रकार की मुक्तियाँ प्राप्त होती हैं। यद्यपि ऐसे भक्त सार्ष्टि, सारूप्य, सामीप्य तथा सालोक्य मुक्ति प्राप्त करते हैं, किन्तु उन्हें इन मुक्तियों की परवाह नहीं होती, क्योंकि ऐसे भक्त भगवान् की दिव्य प्रेममयी सेवा से ही सन्तुष्ट रहते हैं। पाँचवे प्रकार की मुक्ति *सायुज्य* है, जिसे केवल पूजा अनुष्ठान करने वाले भक्त भी कभी स्वीकार नहीं करते। *सायुज्य* अर्थात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के ब्रह्म-तेज में समा जाना तो निर्विशेषवादियों की ही आकांक्षा होती है। भक्त कभी भी सायुज्य मुक्ति की परवाह नहीं करता।

युग-धर्म प्रवर्ताइमु नाम-सङ्कीर्तन ।
चारि भाव-भक्ति दिया नाचामु भुवन ॥ १९ ॥

ग्रुग-धर्म प्रवर्ताइमु नाम-सङ्कीर्तन ।
चारि भाव-भक्ति दिया नाचामु भुवन ॥ १९ ॥

ग्रुग-धर्म—युगधर्म; **प्रवर्ताइमु**—मैं उद्घाटन करूँगा; **नाम-सङ्कीर्तन**—नाम संकीर्तन; **चारि**—चार; **भाव**—भाव; **भक्ति**—भक्ति; **दिया**—देना; **नाचामु**—मैं नचाऊँगा; **भुवन**—संसार।

अनुवाद

"मैं युगधर्म नाम-संकीर्तन का अर्थात् पवित्र नाम के सामूहिक कीर्तन का प्रवर्तन स्वयं करूँगा। मैं संसार को प्रेमाभक्ति के चार रसों की अनुभूति कराकर प्रेम-विभोर होकर नृत्य करने के लिए प्रवृत्त करूँगा।

आपनि करिमु भक्त-भाव अङ्गीकारे ।
आपनि आचरि' भक्ति शिखाइमु सबारे ॥२०॥

आपनि करिमु भक्त-भाव अङ्गीकारे ।
आपनि आचरि' भक्ति शिखाइमु सबारे ॥ २० ॥

आपनि—अपनी, निजी; **करिमु**—मैं बनाऊँगा; **भक्त-भाव**—भक्त की स्थिति; **अङ्गीकारे**—स्वीकृति; **आपनि**—स्वयं; **आचरि'**—अभ्यास करके; **भक्ति**—भक्ति; **शिखाइमु**—मैं सिखाऊँगा; **सबारे**—सबको।

अनुवाद

"मैं भक्त की भूमिका स्वीकार करूँगा और स्वयं भक्ति का अभ्यास करके उसकी शिक्षा दूँगा।

तात्पर्य

जब कोई किसी शुद्ध भक्त के संग में आता है, तो वह इतना ऊपर उठ जाता है कि वह सार्ष्टि, सारूप्य, सामीप्य या सालोक्य मुक्ति की भी आकांक्षा नहीं करता, क्योंकि वह अनुभव करता है कि ऐसी मुक्ति एक प्रकार की इन्द्रियतृप्ति है। शुद्ध भक्त भगवान् से कभी भी अपने निजी लाभ के लिए कुछ नहीं माँगते। यहाँ तक कि यदि उन्हें निजी लाभ प्रदान भी किये जाते हैं, तो वे उन्हें स्वीकार नहीं करते, क्योंकि उनकी एक मात्र आकांक्षा यही रहती है कि वे अपनी दिव्य प्रेममयी सेवा से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को तुष्ट करें। भक्ति के इस सर्वोच्च रूप को भगवान् के अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं सिखा सकता। अतएव जब भगवान् हरे-कृष्ण-कीर्तन की महिमा का प्रसार करने के लिए कलियुग में अवतरित हुए, तो उन्होंने दिव्य स्वयंस्फूर्त (रागानुग) प्रेम के स्तर पर भक्तियोग का भी वितरण किया। आध्यात्मिक जीवन के सर्वोच्च सिद्धान्तों

की शिक्षा देने के लिए वे स्वयं भगवान् श्री चैतन्य के रूप में एक भक्त बनकर प्रकट हुए।

आपने ना कैले धर्म शिखान ना याय ।
एइ त' सिद्धान्त गीता-भागवते गाय ॥२१॥

आपने ना कैले धर्म शिखान ना ग्राय ।
एइ त' सिद्धान्त गीता-भागवते गाय ॥ २१ ॥

आपने—स्वयं; **ना कैले**—यदि अभ्यास न किया जाए; **धर्म**—धर्म; **शिखान**—सिखाना; **ना ग्राय**—आगे नहीं बढ़ता; **एइ**—यह; **त'**—निश्चय ही; **सिद्धान्त**—सिद्धान्त, निष्कर्ष; **गीता**—*भगवद्गीता* में; **भागवते**—*श्रीमद्भागवत* में; **गाय**—वे गाते हैं।

अनुवाद

"जब तक कोई स्वयं भक्ति का अभ्यास नहीं करता, तब तक वह दूसरों को इसकी शिक्षा नहीं दे सकता। इस निष्कर्ष की पुष्टि वस्तुतः पूरी गीता तथा भागवत में हुई है।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥२२॥

ग्रदा ग्रदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ २२ ॥

ग्रदा ग्रदा—जब जब; **हि**—निश्चय ही; **धर्मस्य**—धार्मिक सिद्धान्तों की; **ग्लानिः**—हानि; **भवति**—होती है; **भारत**—हे भरत के वंशज; **अभ्युत्थानम्**—वृद्धि; **अधर्मस्य**—अधर्म की; **तदा**—तब; **आत्मानम्**—स्वयं को; **सृजामि**—प्रकट करता हूँ; **अहम्**—मैं।

अनुवाद

"'हे भरतवंशी, जब जब और जहाँ जहाँ धर्म का ह्रास होता है और अधर्म में वृद्धि होती है, तब तब मैं स्वयं अवतरित होता हूँ।'

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म-संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥२३॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म-संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥ २३॥

परित्राणाय—मुक्ति के लिए, संरक्षण के लिए; **साधूनाम्**—भक्तों को; **विनाशाय**—विनाश के लिए; **च**—तथा; **दुष्कृताम्**—पापियों के; **धर्म**—धर्म के सिद्धान्त; **संस्थापन-अर्थाय**—स्थापित करने के लिए; **सम्भवामि**—मैं प्रकट होता हूँ; **युगे युगे**—प्रत्येक युग में।

अनुवाद

'"पवित्रात्माओं का उद्धार करने तथा दुष्टों का विनाश करने के साथ साथ धर्म की पुनःस्थापना करने के लिए मैं प्रत्येक युग में प्रकट होता हूँ।'

तात्पर्य

श्लोक २२ तथा २३ *भगवद्गीता* (४.७-८) से हैं, जिन्हें भगवान् कृष्ण ने कहा था। इसके बाद के श्लोक २४ तथा २५ भी *भगवद्गीता* (३.२४, २१) से ही हैं।

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ।
सङ्करस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥२४॥

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ।
सङ्करस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥ २४॥

उद्सीदेयुः—विनष्ट हो जायेंगे; **इमे**—ये; **लोकाः**—विश्व; **न कुर्याम्**—न करूँ; **कर्म**—कार्य; **चेत्**—यदि; **अहम्**—मैं; **सङ्करस्य**—अवांछित प्रजा; **च**—तथा; **कर्ता**—स्रष्टा; **स्याम्**—होऊँगा; **उपहन्याम्**—खराब करूँगा; **इमाः**—इन; **प्रजाः**—जीवों का।

अनुवाद

'"यदि मैं धर्म के सही सिद्धान्तों का प्रदर्शन न करता, तो ये सारे जगत् विनष्ट हो जाते और मैं अवांछित जनसंख्या का कारण बनता तथा इन सारे जीवों को विनष्ट कर देता।'

यद् यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥२५॥

यद् यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ २५॥

यत् यत्—जो कुछ, जैसा जैसा; **आचरति**—व्यवहार करता है; **श्रेष्ठः**—श्रेष्ठ पुरुष; **तत् तत्**—वही; **एव**—निश्चय ही; **इतरः**—साधारण; **जनः**—लोग; **सः**—वह; **यत्**—जो कुछ ; **प्रमाणम्**—मानदण्ड; **कुरुते**—करता है; **लोकः**—लोग; **तत्**—वही; **अनुवर्तते**—अनुगमन करता है।

अनुवाद

"'महान् पुरुष जो भी आचरण करता है, सामान्य जन उसका अनुगमन करते हैं। वह आदर्श कार्यों से जो भी मानदण्ड स्थापित करता है, उसका ही अनुसरण सारा जगत् करता है।'

युग-धर्म-प्रवर्तन हय अंश हैते ।
आमा विना अन्ये नारे व्रज-प्रेम दिते ॥२६॥

युग-धर्म-प्रवर्तन हय अंश हैते ।
आमा विना अन्ये नारे व्रज-प्रेम दिते ॥ २६ ॥

युग-धर्म—युगधर्म; **प्रवर्तन**—स्थापना; **हय**—है; **अंश**—पूर्णांश; **हैते**—से; **आमा**—मेरे; **विना**—बिना; **अन्ये**—दूसरा; **नारे**—नहीं कर सकता; **व्रज-प्रेम**—व्रजवासियों की भाँति प्रेम करना; **दिते**—प्रदान करना।

अनुवाद

"मेरे पूर्ण अंश प्रत्येक युग के लिए धर्म के सिद्धान्तों की स्थापना कर सकते हैं। किन्तु मेरे अतिरिक्त अन्य कोई वह प्रेमाभक्ति प्रदान नहीं कर सकता, जो व्रज के निवासियों द्वारा सम्पन्न की गई थी।

सन्त्यवतारा बहवः
पङ्कज-नाभस्य सर्वतो-भद्राः ।
कृष्णादन्यः को वा
लतास्वपि प्रेम-दो भवति ॥२७॥

सन्त्यवतारा बहवः
पङ्कज-नाभस्य सर्वतो-भद्राः ।
कृष्णादन्यः को वा
लतास्वपि प्रेम-दो भवति ॥ २७ ॥

सन्तु—होने दो; **अवतारा:**—अवतार; **बहव:**—बहुत; **पङ्कज-नाभस्य**—भगवान् के जिनकी नाभि से कमल का पुष्प उगता है; **सर्वत:-भद्रा:**—पूर्णतया शुभ; **कृष्णात्**—भगवान् कृष्ण की अपेक्षा; **अन्य:**—अन्य; **क: वा**—जो सम्भवत:; **लतासु**—शरणागत जीवों पर; **अपि**—भी; **प्रेम-द:**—प्रेम के देनेवाले; **भवति**—होते हैं।

अनुवाद

"'हो सकता है कि भगवान् के सर्व-कल्याणकारी अनेक अवतार हों, किन्तु श्रीकृष्ण के अतिरिक्त ऐसा कौन है, जो शरणागतों को भगवत्प्रेम प्रदान कर सके?'

तात्पर्य

बिल्वमंगल ठाकुर की रचनाओं से लिया गया यह श्लोक *लघुभागवतामृत* (१.५.३७) में पाया जाता है।

তাহাতে আপন ভক্ত-গণ করি' সঙ্গে ।
পৃথিবীতে অবতরি' করিমু নানা রঙ্গে ॥২৮॥

তাহাতে আপন ভক্ত-গণ করি' সঙ্গে ।
পৃথিবীতে অবতরি' করিমু নানা রঙ্গে ॥ ২৮ ॥

তাহাতে—उसमें; **আপন**—मेरा अपना; **ভক্ত-গণ**—भक्तगण; **করি'**—करूँगा; **সঙ্গে**—मिलकर; **পৃথিবীতে**—पृथ्वी पर; **অবতরি'**—अवतरित होकर; **করিমু**—मैं करूँगा; **নানা**—विविध; **রঙ্গে**—रंग की लीलाएँ।

अनुवाद

"अतएव मैं अपने भक्तों के संग पृथ्वी पर प्रकट होकर विविध रंगमयी लीलाएँ संपादन करूँगा।"

এত ভাবি' কলি-কালে প্রথম সন্ধ্যায় ।
অবতীর্ণ হৈলা কৃষ্ণ আপনি নদীয়ায় ॥২৯॥

এত ভাবি' কলি-কালে প্রথম সন্ধ্যায় ।
অবতীর্ণ হৈলা কৃষ্ণ আপনি নদীয়ায় ॥ ২৯ ॥

এত—इस प्रकार; **ভাবি'**—सोचकर; **কলি-কালে**—कलियुग में; **প্রথম**—पहली; **সন্ধ্যায়**—संध्या में; **অবতীর্ণ হৈলা**—अवतीर्ण हुए; **কৃষ্ণ**—भगवान् कृष्ण; **আপনি**—स्वयं; **নদীয়ায়**—नदिया में।

अनुवाद

इस प्रकार से सोचते हुए स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण कलियुग के प्रारम्भ में (प्रथम संध्या में) नदिया में अवतरित हुए।

तात्पर्य

प्रथम-सन्ध्या युग का प्रारम्भ है। खगोल-विज्ञान की गणना के अनुसार युग बारह भागों में विभाजित किया जाता है। इन बारह भागों में से पहला भाग *प्रथम-सन्ध्या* कहलाता है। *शेष-सन्ध्या* पिछले युग का अन्तिम भाग होती है और यह प्रथम सन्ध्या के साथ मिलकर दो युगों की सन्धि का निर्माण करती है। *सूर्य-सिद्धान्त* के अनुसार कलियुग की प्रथम-सन्ध्या ३६,००० सौर वर्षों तक रहती है। चैतन्य महाप्रभु कलियुग की प्रथम-सन्ध्या में प्रकट हुए जब ४,५८६ सौर वर्ष बीत चुके थे।

চৈতন্য-সিংহের নবদ্বীপে অবতার ।
সিংহ-গ্রীব, সিংহ-বীর্য, সিংহের হুঙ্কার ॥৩০॥

चैतन्य-सिंहेर नवद्वीपे अवतार ।
सिंह-ग्रीव, सिंह-वीर्य, सिंहेर हुङ्कार ॥ ३० ॥

चैतन्य-सिंहेर—सिंह समान चैतन्य महाप्रभु; **नवद्वीपे**—नवद्वीप में; **अवतार**—अवतार; **सिंह-ग्रीव**—सिंह की ग्रीवा वाले; **सिंह-वीर्य**—सिंह की शक्ति; **सिंहेर हुङ्कार**—सिंह की गरज।

अनुवाद

इस प्रकार सिंहरूप भगवान् चैतन्य नवद्वीप में प्रकट हुए हैं। उनके कंधे सिंह जैसे हैं, उनकी शक्ति सिंह जैसी है और उनका उच्च स्वर सिंह जैसा है।

সেই সিংহ বসুক্জীবের হৃদয়-কন্দরে ।
কল্মষ-দ্বিরদ নাশে যাঁহার হুঙ্কারে ॥৩১॥

सेइ सिंह वसुक्जीवेर हृदय-कन्दरे ।
कल्मष-द्विरद नाशे याँहार हुङ्कारे ॥ ३१ ॥

सेइ—वह; **सिंह**—सिंह; **वसुक्**—बैठने दो; **जीवेर**—जीवों की; **हृदय**—हृदय; **कन्दरे**—गुफा में; **कल्मष**—कल्मषों की, पापों की; **द्वि-रद**—हाथी; **नाशे**—नष्ट करता है; **याँहार**—जिसकी; **हुङ्कारे**—गरज।

अनुवाद

वह सिंह प्रत्येक जीव के हृदय के भीतर आसीन हो। इस प्रकार वे अपनी गर्जना से मनुष्य के हाथी जैसे पापों को दूर करें।

प्रथम लीलाय ताँर 'विश्वम्भर' नाम ।
भक्ति-रसे भरिल, धरिल भूत-ग्राम ॥ ३२॥

प्रथम लीलाय ताँर 'विश्वम्भर' नाम ।
भक्ति-रसे भरिल, धरिल भूत-ग्राम ॥ ३२॥

प्रथम—पहली; **लीलाय**—लीलाओं में; **ताँर**—उनका; **विश्वम्भर नाम**—विश्वम्भर नाम; **भक्ति-रसे**—भक्ति रस के साथ; **भरिल**—उन्होंने भर दिया; **धरिल**—बचाया; **भूत-ग्राम**—सभी जीवों को।

अनुवाद

अपनी प्रारम्भिक लीलाओं में वे विश्वम्भर नाम से जाने जाते हैं, क्योंकि वे संसार को भक्तिरूपी अमृत से आप्लावित कर देते हैं और इस तरह जीवों का उद्धार करते हैं।

डुभृञ्धातुर अर्थ—पोषण, धारण ।
पुषिल, धरिल प्रेम दिया त्रि-भुवन ॥ ३३॥

डुभृञ्धातुर अर्थ—पोषण, धारण ।
पुषिल, धरिल प्रेम दिया त्रि-भुवन ॥ ३३॥

डुभृञ्—डुभृञ् के रूप में जाने जाने वाले; **धातुर**—धातु का; **अर्थ**—अर्थ; **पोषण**—पोषण; **धारण**—धारण; **पुषिल**—पोषित; **धरिल**—धारण किया हुआ; **प्रेम दिया**—भगवत् प्रेम बाँटा; **त्रि-भुवन**—त्रिभुवन में।

अनुवाद

"डुभृञ्" क्रिया-धातु (जो विश्वम्भर शब्द की मूल है) पोषण तथा

पालन की सूचक है। वे (चैतन्य महाप्रभु) भगवत्प्रेम का वितरण करके तीनों लोकों का पालन-पोषण करते हैं।

शेष-लीलाय धरे नाम 'श्री-कृष्ण-चैतन्य' ।
श्री-कृष्ण जानाये सब विश्व कैल धन्य ॥ ३४॥

शेष-लीलाय धरे नाम 'श्री-कृष्ण-चैतन्य' ।
श्री-कृष्ण जानाये सब विश्व कैल धन्य ॥ ३४॥

शेष-लीलाय—अपनी अन्तिम लीलाओं में; **धरे**—उन्होंने धारण किया; **नाम**—नाम; **श्री-कृष्ण-चैतन्य**—श्रीकृष्ण चैतन्य; **श्री-कृष्ण**—भगवान् कृष्ण के विषय में; **जानाये**—उन्होंने सिखाया; **सब**—सब; **विश्व**—संसार; **कैल**—बनाया; **धन्य**—धन्य।

अनुवाद

अपनी अन्तिम लीलाओं में वे भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य के नाम से विख्यात हैं। वे भगवान् श्रीकृष्ण के नाम तथा महिमा के बारे में शिक्षा देकर सारे संसार को आशीर्वाद प्रदान करते हैं।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु केवल चौबीस वर्ष की आयु तक गृहस्थ आश्रम में रहे। तत्पश्चात् वे संन्यास आश्रम में प्रविष्ट हुए और अड़तालीस वर्ष की आयु तक इस भौतिक जगत् में प्रकट रूप में रहे। अतएव उनके कार्यों का अन्तिम अंश—*शेष-लीला*—चौबीस वर्षों तक रहा।

कुछ तथाकथित वैष्णवों का कहना है कि वैष्णव सम्प्रदाय में श्री चैतन्य महाप्रभु के आने तक संन्यास नहीं लिया जाता था। यह बहुत बुद्धिमानी वाला प्रस्ताव नहीं है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रीपाद केशव भारती से संन्यास ग्रहण किया था, जो शंकर सम्प्रदाय के थे, जिसमें संन्यासियों के लिए केवल दस नामों का अनुमोदन होता है। किन्तु श्रीपाद शंकराचार्य के आविर्भाव के बहुत पहले से संन्यास आश्रम का अस्तित्व विष्णु स्वामी की वैष्णव परम्परा में था। इस परम्परा में दस प्रकार के संन्यासों के नाम तथा त्रिदण्ड धारण करने वाले १०८ प्रकार के संन्यासियों के नाम पाये जाते हैं। इसकी सम्पुष्टि वैदिक नियमों द्वारा होती है। अतएव शंकराचार्य के आविर्भाव के पहले भी वैष्णव-संन्यास का अस्तित्व था, किन्तु वे जो वैष्णव संन्यास के बारे में कुछ भी नहीं

जानते, व्यर्थ ही यह घोषित करते हैं कि वैष्णव सम्प्रदाय में संन्यास नहीं है।

श्री चैतन्य महाप्रभु के काल में समाज में शंकराचार्य का अत्यधिक प्रभाव था। लोग सोचते थे कि संन्यास केवल शंकराचार्य की परम्परा में ही ग्रहण किया जा सकता था। श्री चैतन्य महाप्रभु चाहते तो गृहस्थ बने रहकर भी प्रचार के कार्यों को सम्पन्न करते रहते, किन्तु उन्होंने देखा कि गृहस्थ जीवन उनके उद्देश्य में बाधक है। अतएव उन्होंने संन्यास ग्रहण करने का निश्चय किया। चूँकि उनके संन्यास ग्रहण करने का उद्देश्य जनता का ध्यान आकृष्ट करना भी था, अतएव सामाजिक प्रथा को किसी प्रकार से विचलित न करने की इच्छा से उन्होंने शंकराचार्य की परम्परा में एक संन्यासी से संन्यास-दीक्षा ली, यद्यपि वैष्णव सम्प्रदाय में भी संन्यास दिया जाता था।

शंकर सम्प्रदाय में संन्यासियों को दस भिन्न प्रकार के नाम दिये जाते हैं—(१) तीर्थ, (२) आश्रम, (३) वन, (४) अरण्य, (५) गिरि, (६) पर्वत, (७) सागर, (८) सरस्वती, (९) भारती तथा (१०) पुरी। संन्यास में प्रवेश करने के पूर्व ब्रह्मचारी को, जो कि संन्यासी का सहायक होता है, ब्रह्मचारी के नामों में से कोई एक नाम दिया जाता है। तीर्थ तथा आश्रम उपाधि वाले संन्यासी सामान्यतया द्वारका में रहते हैं और उनका ब्रह्मचारी नाम *स्वरूप* होता है। वन तथा अरण्य नामक संन्यासी पुरुषोत्तम या जगन्नाथपुरी में रहते हैं और उनका ब्रह्मचारी नाम *प्रकाश* होता है। गिरि, पर्वत तथा सागर उपाधि वाले सामान्यतया बदरिकाश्रम में रहते हैं और उनका ब्रह्मचारी नाम *आनन्द* होता है। सरस्वती, भारती तथा पुरी उपाधि वाले सामान्यतया दक्षिण भारत में शृंगेरी में रहते हैं और उनका ब्रह्मचारी नाम *चैतन्य* होता है।

श्रीपाद शंकराचार्य ने भारत में चारों दिशाओं—उत्तर, दक्षिण, पूर्व तथा पश्चिम में चार मठ स्थापित किये और इन्हें अपने चार संन्यासी शिष्यों को सौंप दिया। अब इन चार मुख्य मठों के अन्तर्गत मठों की सैकड़ों शाखाएँ हैं और यद्यपि उनमें औपचारिक एकरूपता है, किन्तु उनकी कार्यप्रणाली में बहुत अन्तर है। इन मठों के चार विभिन्न सम्प्रदाय आनन्दवार, भोगवार, कीटवार तथा भूमिवार के नाम से विख्यात हैं और कालक्रम से इनमें विभिन्न विचारों तथा नारों का विकास हुआ है।

परम्परा के नियमानुसार शंकर सम्प्रदाय में संन्यास आश्रम में प्रवेश करने के इच्छुक व्यक्ति को पहले एक प्रामाणिक संन्यासी के अधीन ब्रह्मचारी के रूप में प्रशिक्षण लेना होता है। ब्रह्मचारी का नाम उस समूह के अनुसार निश्चित होता है, जिस समूह का वह संन्यासी होता है। श्री चैतन्य ने केशव भारती से संन्यास दीक्षा ली। जब वे सर्वप्रथम केशव भारती के पास गये, तो उन्हें ब्रह्मचारी के रूप में स्वीकार किया गया और उनका नाम श्रीकृष्ण चैतन्य ब्रह्मचारी रखा गया। संन्यास ग्रहण कर लेने के बाद उन्होंने कृष्ण चैतन्य नाम रखना पसन्द किया।

गुरु-शिष्य परम्परा के महान् आचार्यों ने यह नहीं बतलाया है कि चैतन्य महाप्रभु ने भारती से संन्यास लेने के बाद अपने नाम के साथ भारती क्यों नहीं लगाया। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी महाराज ने स्वयं आगे आकर इसके विषय में व्याख्या दी है कि शंकर सम्प्रदाय का संन्यासी यह सोचता है कि वह सर्वोपरि बन गया है, अतएव श्री चैतन्य ने ऐसी भ्रान्ति से बचने के लिए अपना नाम श्रीकृष्ण चैतन्य रखा और अपने आपको नित्य सेवक के रूप में स्थापित किया। ब्रह्मचारी से आशा की जाती है कि वह गुरु की सेवा करेगा, अतएव उन्होंने अपने गुरु की सेवा को अस्वीकार नहीं किया। ऐसे पद को स्वीकार करना शिष्य तथा गुरु के पारस्परिक सम्बन्ध के अनुकूल है।

प्रामाणिक जीवनियों में यह भी उल्लेख मिलता है कि भगवान् श्री चैतन्य ने संन्यास ग्रहण करते समय दण्ड तथा भिक्षा-पात्र धारण किया, जो संन्यास आश्रम के प्रतीक हैं।

তাঁর যুগাবতার জানি' গর্গ মহাশয় ।
কৃষ্ণের নাম-করণে করিয়াছে নির্ণয় ॥ ৩৫ ॥

তাঁর য়ুগাবতার জানি' গর্গ মহাশয় ।
কৃষ্ণের নাম-করণে করিয়াছে নির্ণয় ॥ ৩৫ ॥

তাঁর—उनका; **য়ুগ-অবতার**—युग अवतार; **জানি'**—जानकर; **গর্গ**—गर्गमुनि; **মহাশয়**—महाशय; **কৃষ্ণের**—भगवान् कृष्ण की; **নাম-করণে**—नाम करण संस्कार में; **করিয়াছে**—किया; **নির্ণয়**—निर्णय।

अनुवाद

उनको (चैतन्य को) कलियुग के लिए अवतार जानकर ही गर्गमुनि ने कृष्ण के नामकरण-संस्कार के समय उनके आविर्भाव की भविष्यवाणी की थी।

आसन्वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनु-युगं तनूः ।
शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥ ३६ ॥

आसन्वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनु-युगं तनूः ।
शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥ ३६ ॥

आसन्—थे; **वर्णाः**—रंग; **त्रयः**—तीन; **हि**—निश्चय ही; **अस्य**—इसके; **गृह्णतः**—जो प्रकट कर रहा है; **अनु-युगम्**—युग के अनुसार; **तनूः**—शरीर; **शुक्लः**—श्वेत; **रक्तः**—लाल; **तथा**—तथा; **पीतः**—पीत; **इदानीम्**—अब; **कृष्णताम्**—काला; **गतः**—पाया।

अनुवाद

"जब यह बालक (कृष्ण) विभिन्न युगों में प्रकट होता है, तो उसके अन्य तीन रंग होते हैं—श्वेत, लाल तथा पीत। इस समय यह दिव्य श्याम (कृष्ण) रंग में प्रकट हुआ है।"

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१०.८.१३) से लिया गया है।

शुक्ल, रक्त, पीत-वर्ण—एइ तिन द्युति ।
सत्य-त्रेता-कलि-काले धरेन श्री-पति ॥ ३७ ॥

शुक्ल, रक्त, पीत-वर्ण—एइ तिन द्युति ।
सत्य-त्रेता-कलि-काले धरेन श्री-पति ॥ ३७ ॥

शुक्ल—श्वेत; **रक्त**—लाल; **पीत-वर्ण**—पीला रंग; **एइ**—ये; **तिन**—तीन; **द्युति**—चमक; **सत्य**—सत्ययुग में; **त्रेता**—त्रेतायुग में; **कलि-काले**—कलियुग में; **धरेन**—धारण करते हैं; **श्री-पति**—लक्ष्मी पति।

अनुवाद

श्वेत, लाल तथा पीत—ये तीन शारीरिक कान्तियाँ हैं, जिन्हें

लक्ष्मीदेवी के पति भगवान् क्रमशः सत्य, त्रेता तथा कलियुग में धारण करते हैं।

इदानीं द्वापरे तिँहो हैला कृष्ण-वर्ण ।
एइ सब शास्त्रागम-पुराणेर मर्म ॥ ३८ ॥

इदानीं द्वापरे तिंहो हैला कृष्ण-वर्ण ।
एइ सब शास्त्रागम-पुराणेर मर्म ॥ ३८ ॥

इदानीम्—अब; **द्वापरे**—द्वापर युग में; **तिंहो**—वे; **हैला**—हो गये; **कृष्ण-वर्ण**—श्याम वर्ण के; **एइ**—थे; **सब**—सब; **शास्त्र-आगम**—और वैदिक शास्त्र; **पुराणेर**—पुराणों के; **मर्म**—मर्म, रहस्य।

अनुवाद

अब द्वापर युग में भगवान् श्याम रंग लेकर अवतरित हुए थे। इस सन्दर्भ में पुराणों तथा अन्य वैदिक ग्रंथों के कथनों का यही सार है।

द्वापरे भगवान्श्यामः पीत-वासा निजायुधः ।
श्री-वत्सादिभिरङ्कैश्च लक्षणैरुपलक्षितः ॥ ३९ ॥

द्वापरे भगवान्श्यामः पीत-वासा निजायुधः ।
श्री-वत्सादिभिरङ्कैश्च लक्षणैरुपलक्षितः ॥ ३९ ॥

द्वापरे—द्वापर युग में; **भगवान्**—भगवान्; **श्यामः**—श्याम; **पीत-वासाः**—पीत वस्त्रों वाले; **निज**—अपने; **आयुधः**—अस्त्रों सहित; **श्रीवत्स-आदिभिः**—श्रीवत्स आदि; **अङ्कैः**—शारीरिक चिह्नों से; **च**—और; **लक्षणैः**—कौस्तुभ मणि जैसे बाह्य लक्षणों से; **उपलक्षितः**—लक्षित।

अनुवाद

"द्वापर युग में भगवान् कृष्ण वर्ण में प्रकट होते हैं। वे पीत वस्त्र धारण करते हैं, वे अपने आयुध (हथियार) लिए रहते हैं तथा कौस्तुभ मणि एवं श्रीवत्स चिह्न से अलंकृत रहते हैं। उनके लक्षणों का ऐसा वर्णन किया गया है।"

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (११.५.२७) का है। इसे राजा निमि से नौ

राजयोगियों में सर्वप्रमुख सन्त करभाजन ने विभिन्न युगों में भगवान् के विविध स्वरूपों के सम्बन्ध में बतलाते हुए कहा था।

कलि-युगे युग-धर्म——नामेर प्रचार ।
तथि लागि' पीत-वर्ण चैतन्यावतार ॥ ४० ॥

कलि-युगे युग-धर्म——नामेर प्रचार ।
तथि लागि' पीत-वर्ण चैतन्यावतार ॥ ४० ॥

कलि-युगे—कलियुग में; **युग-धर्म**—युग की धार्मिक रीति; **नामेर**—पवित्र नाम का; **प्रचार**—प्रचार; **तथि**—यह; **लागि'**—इसके लिए; **पीत-वर्ण**—पीले रंग वाले; **चैतन्य-अवतार**—चैतन्य महाप्रभु का अवतार।

अनुवाद

कलियुग की धार्मिक विधि यह है कि भगवान् के पवित्र नाम की महिमाओं का प्रसार किया जाये। केवल इसी उद्देश्य से भगवान् पीत रंग लेकर श्री चैतन्य रूप में अवतरित हुए हैं।

तात्पर्य

इस कलियुग में हर एक के लिए धर्म की व्यावहारिक विधि यही है कि वह ईश्वर के नाम का कीर्तन करे। इसका सूत्रपात इस युग में भगवान् श्री चैतन्य ने किया। *भक्तियोग* का शुभारम्भ ही पवित्र नाम के कीर्तन से होता है, जिसकी पुष्टि मध्वाचार्य ने *मुण्डक उपनिषद्* के अपने भाष्य में की है। उन्होंने *नारायण-संहिता* के इस श्लोक का प्रमाण दिया है :

द्वापरीयैर्जनैर्विष्णुः पञ्चरात्रैस्तु केवलैः ।
कलौ तु नाममात्रेण पूज्यते भगवान् हरिः ॥

"द्वापर युग में लोगों को भगवान् विष्णु की पूजा *नारद-पञ्चरात्र* तथा अन्य ऐसे प्रामाणिक पुस्तकों के विधानों के द्वारा ही करनी चाहिए। किन्तु कलियुग में लोगों को चाहिए कि वे केवल पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के पवित्र नामों का कीर्तन करें।" हरे कृष्ण मन्त्र का उल्लेख कई उपनिषदों में विशेष रूप से किया गया है, यथा *कलि-सन्तरण उपनिषद्* में, जहाँ यह कहा गया है :

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥
इति षोडशकं नाम्नां कलिकल्मषनाशनम्।
नातः परतरोपायः सर्ववेदेषु दृश्यते॥

"समस्त वैदिक साहित्य में खोजने के बाद इस युग के लिए हरे कृष्ण के कीर्तन से अधिक उत्कृष्ट अन्य कोई धर्म-विधि नहीं मिलेगी।"

तप्त-हेम-सम-कान्ति, प्रकाण्ड शरीर ।
नव-मेघ जिनि कण्ठ-ध्वनि ये गम्भीर ॥ ४१॥
तप्त-हेम-सम-कान्ति, प्रकाण्ड शरीर ।
नव-मेघ जिनि कण्ठ-ध्वनि ग्रे गम्भीर ॥ ४१॥

तप्त-हेम—पिघले सोने की तरह; **सम-कान्ति**—वैसी चमक; **प्रकाण्ड**—बहुत, प्रकाण्ड; **शरीर**—शरीर; **नव-मेघ**—नए मेघ; **जिनि**—जीतकर; **कण्ठ-ध्वनि**—कण्ठ-ध्वनि; **ग्रे**—वह; **गम्भीर**—गम्भीर।

अनुवाद

उनके विस्तृत शरीर की कान्ति पिघले सोने के समान है। उनकी गम्भीर वाणी नये उमड़े बादलों की गर्जना को परास्त करने वाली है।

दैर्घ्य-विस्तारे येई आपनार हात ।
चारि हस्त हय 'महा-पुरुष' विख्यात ॥ ४२॥
दैर्घ्य-विस्तारे ग्रेइ आपनार हात ।
चारि हस्त हय 'महा-पुरुष' विख्यात ॥ ४२॥

दैर्घ्य—लम्बाई में; **विस्तारे**—चौड़ाई में; **ग्रेइ**—जो; **आपनार**—अपना स्वयं का; **हात**—हाथ; **चारि**—चार; **हस्त**—हस्त; **हय**—है; **महा-पुरुष**—महापुरुष; **विख्यात**—के रूप में विख्यात।

अनुवाद

जो व्यक्ति अपने हाथ से चार हाथ ऊँचा और इतना ही चौड़ा होता है, वह *महापुरुष* कहलाता है।

'न्यग्रोध-परिमण्डल' हय ताँर नाम ।
न्यग्रोध-परिमण्डल-तनु चैतन्य गुण-धाम ॥ ४३ ॥

'न्यग्रोध-परिमण्डल' हय ताँर नाम ।
न्यग्रोध-परिमण्डल-तनु चैतन्य गुण-धाम ॥ ४३ ॥

न्यग्रोध-परिमण्डल—न्यग्रोध परिमण्डल; **हय**—है; **ताँर**—उसका; **नाम**—नाम; **न्यग्रोध-परिमण्डल**—न्यग्रोध परिमण्डल; **तनु**—ऐसे शरीर वाले; **चैतन्य**—भगवान् चैतन्य महाप्रभु; **गुण-धाम**—सद्गुणों के धाम।

अनुवाद

ऐसा व्यक्ति "न्यग्रोध परिमण्डल" कहलाता है। समस्त सद्गुणों के मूर्तिमन्त स्वरूप श्री चैतन्य महाप्रभु का शरीर न्यग्रोध परिमण्डल है।

तात्पर्य

ये शारीरिक लक्षण भगवान् के अतिरिक्त, जिन्होंने बद्धजीवों को अपनी ही माया में लगा रखा है, अन्य किसी में नहीं पाये जाते। ये लक्षण निश्चय ही विष्णु के अवतार के सूचक हैं, और किसी के नहीं।

आजानुलम्बित-भुज कमल-लोचन ।
तिलफूल-जिनि-नासा, सुधांशु-वदन ॥ ४४ ॥

आजानुलम्बित-भुज कमल-लोचन ।
तिलफुल-जिनि-नासा, सुधांशु-वदन ॥ ४४ ॥

आ-जानु-लम्बित-भुज—भुजाएँ जो घुटनों तक पहुँचती हो; **कमल-लोचन**—कमल लोचनों वाले; **तिल-फुल**—तिल पौधे के फूल; **जिनि**—जीतकर; **नासा**—जिनकी नासिका; **सुधा-अंशु-वदन**—जिनका चेहरा चन्द्रमा की तरह।

अनुवाद

उनकी भुजाएँ इतनी लम्बी हैं कि वे उनके घुटनों तक पहुँचती हैं, उनकी आँखें कमल के फूलों के सदृश हैं, उनकी नासिका तिल के फूल और उनका मुखमंडल चन्द्रमा के समान सुन्दर है।

शान्त, दान्त, कृष्ण-भक्ति-निष्ठा-परायण ।
भक्त-वत्सल, सुशील, सर्व-भूते सम ॥ ४५ ॥

शान्त, दान्त, कृष्ण-भक्ति-निष्ठा-परायण ।
भक्त-वत्सल, सुशील, सर्व-भूते सम ॥ ४५ ॥

शान्त—शान्त; **दान्त**—नियंत्रित; **कृष्ण-भक्ति**—भगवान् कृष्ण की भक्ति को; **निष्ठा-परायण**—पूर्ण रूपे समर्पित; **भक्त-वत्सल**—भक्तों के प्रिय; **सु-शील**—सुशील, अच्छे चरित्र वाले; **सर्व-भूते**—सभी जीवों को; **सम**—बराबर, समान।

अनुवाद

वे शान्त, संयमित तथा भगवान् श्रीकृष्ण की दिव्य सेवा में निष्ठा परायण हैं। वे अपने भक्तों के प्रति स्नेहिल हैं, सुशील हैं और सारे जीवों पर समभाव रखने वाले हैं।

চন্দনের অঙ্গদ-বালা, চন্দন-ভূষণ ।
নৃত্য-কালে পরি' করেন কৃষ্ণ-সঙ্কীর্তন ॥ ৪৬ ॥

চন্দনের অঙ্গদ-বালা, চন্দন-ভূষণ ।
নৃত্য-কালে পরি' করেন কৃষ্ণ-সঙ্কীর্তন ॥ ৪৬ ॥

চন্দনের—चन्दन को; **অঙ্গদ**—बाजूबन्द; **বালা**—चूड़ियाँ; **চন্দন**—चन्दन लेप; **ভূষণ**—भूषण; **নৃত্য-কালে**—नृत्य के समय; **পরি'**—पहनते हैं; **করেন**—करते हैं; **কৃষ্ণ-সঙ্কীর্তন**—कृष्ण नाम का संकीर्तन।

अनुवाद

वे चन्दन के बने कंगनों और बाजूबन्दों से विभूषित हैं और वे चन्दन के लेप से मंडित हैं। वे श्रीकृष्ण-संकीर्तन में नृत्य करने के उद्देश्य से ही ये आभूषण धारण करते हैं।

এই সব গুণ লঞা মুনি বৈশম্পায়ন ।
সহস্র-নামে কৈল তাঁর নাম-গণন ॥ ৪৭ ॥

এই সব গুণ লঞা মুনি বৈশম্পায়ন ।
সহস্র-নামে কৈল তাঁর নাম-গণন ॥ ৪৭ ॥

এই—ये; **সব**—सब; **গুণ**—गुण; **লঞা**—लेकर; **মুনি**—मुनि; **বৈশম্পায়ন**—वैषम्पायन; **সহস্র-নামে**—विष्णुसहस्र नाम में; **কৈল**—किया; **তাঁর**—उनका; **নাম-গণন**—नाम सम्मिलित।

अनुवाद

श्री चैतन्य के इन सारे गुणों को लिपिबद्ध करते हुए मुनि वैशम्पायन ने विष्णुसहस्रनाम में उनका नाम सम्मिलित कर लिया है।

दुइ लीला चैतन्येर—आदि आर शेष ।
दुइ लीलाय चारि चारि नाम विशेष ॥ ४८ ॥

दुइ लीला चैतन्येर—आदि आर शेष ।
दुइ लीलाय चारि चारि नाम विशेष ॥ ४८ ॥

दुइ—दो; **लीला**—लीलाएँ; **चैतन्येर**—चैतन्य महाप्रभु की; **आदि**—आदि, प्रारम्भिक; **आर**—और; **शेष**—अन्तिम; **दुइ**—दो; **लीलाय**—लीलाओं में; **चारि**—चार; **चारि**—चार; **नाम**—नाम; **विशेष**—विशेष।

अनुवाद

श्री चैतन्य की लीला के दो विभाग हैं—आदि लीला तथा शेष लीला। इन दोनों लीलाओं में उनके चार-चार नाम हैं।

सुवर्ण-वर्णो हेमाङ्गो वराङ्गश्चन्दनाङ्गदी ।
सन्न्यास-कृच्छमः शान्तो निष्ठा-शान्ति-परायणः ॥ ४९ ॥

सुवर्ण-वर्णो हेमाङ्गो वराङ्गश्चन्दनाङ्गदी ।
सन्न्यास-कृच्छमः शान्तो निष्ठा-शान्ति-परायणः ॥ ४९ ॥

सुवर्ण—सोने के; **वर्णः**—रंगवाले; **हेम-अङ्गः**—पिघले सोने जैसे शरीर वाले; **वर-अङ्गः**—सुन्दरतम शरीर वाले; **चन्दन-अङ्गदी**—जिनके शरीर पर चंदन का लेप था; **सन्न्यास-कृत्**—संन्यासी जीवन जीते हुए; **शमः**—शम; **शान्तः**—शान्त; **निष्ठा**—निष्ठा; **शान्ति**—शान्ति के; **परायणः**—परायण।

अनुवाद

"अपनी आदि लीला में वे सुनहरे अंग वाले गृहस्थ के रूप में प्रकट होते हैं। उनके अंग-प्रत्यंग सुन्दर तथा उनका चन्दन-लेपित शरीर पिघले सोने जैसा लगता है। शेष लीला में वे संन्यास ग्रहण करते हैं और वे समभाव वाले तथा शान्त रहते हैं। वे शान्ति तथा भक्ति के सर्वोच्च धाम हैं, क्योंकि वे निर्विशेषवादी अभक्तों को चुप करा देते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक *महाभारत* (दानधर्म, विष्णुसहस्रनाम स्तोत्र) से लिया गया है। श्रील बलदेव विद्याभूषण ने *विष्णुसहस्रनाम* की टीका *नामार्थ-सुधा* नाम से की है, जिसमें इस श्लोक की व्याख्या करते हुए उन्होंने बतलाया है कि उपनिषदों के प्रमाण के अनुसार श्री चैतन्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। वे व्याख्या करते हैं कि *सुवर्ण-वर्णः* का अर्थ है सुनहरा शरीर। वे *यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्* (मुण्डक उपनिषद् ३.१.३) वैदिक निर्देश का भी प्रमाण देते हैं। *रुक्म-वर्णं कर्तारम्-ईशम्* पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का सूचक है, जिनके शरीर का रंग पिघले सोने जैसा है। *पुरुषम्* का अर्थ है परमेश्वर और *ब्रह्मयोनिम्* सूचित करता है कि वे परम ब्रह्म भी हैं। यह प्रमाण भी यही सिद्ध करता है कि श्री चैतन्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण हैं। सुनहरे रंग वाले भगवान् के वर्णन का दूसरा अर्थ यह भी है कि श्री चैतन्य का व्यक्तित्व सोने के समान मोहक है। श्रील बलदेव विद्याभूषण ने *वराङ्ग* शब्द का अर्थ "अपूर्व सुन्दर" लिया है।

श्री चैतन्य ने गृहस्थ जीवन त्यागकर अपने उद्देश्य का प्रचार करने के लिए संन्यास ग्रहण किया। उनमें कई दृष्टिकोणों से समभाव है। पहला, वे भगवान् के गुह्य सत्य का वर्णन करते हैं और दूसरा, वे ज्ञान तथा कृष्ण के प्रति अनुरक्ति द्वारा हर एक को तुष्ट करते हैं। वे शान्त हैं, क्योंकि वे उन सारे विषयों का परित्याग करते हैं, जो कृष्ण की सेवा से सम्बन्धित नहीं हैं। श्रील बलदेव विद्याभूषण ने बतलाया है कि *निष्ठा* शब्द बताता है कि वे श्रीकृष्ण के पवित्र नाम के कीर्तन में अत्यन्त दृढ़ थे। श्री चैतन्य ने सारे भक्ति-विरोधियों का, विशेषतया अद्वैतवादियों का दमन किया, जो वास्तव में परमेश्वर के साकार रूप के प्रतिकूल होते हैं।

ব্যক্ত করি' ভাগবতে কহে বার বার ।
কলি-যুগে ধর্ম—নাম-সঙ্কীর্তন সার ॥৫০॥

व्यक्त करि' भागवते कहे बार बार ।
कलि-युगे धर्म—नाम-सङ्कीर्तन सार ॥५०॥

व्यक्त—व्यक्त; **करि'**—करके; **भागवते**—*श्रीमद्भागवत्* में; **कहे**—वे कहते हैं; **बार बार**—बार बार; **कलि-युगे**—कलियुग में; **धर्म**—धर्म; **नाम-सङ्कीर्तन**—पवित्र नाम संकीर्तन; **सार**—सार।

अनुवाद

***श्रीमद्भागवत* में यह बारम्बार स्पष्ट रूप से कहा गया है कि कलियुग में धर्म का सार कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन करना है।**

इति द्वापर उर्वीश स्तुवन्ति जगदीश्वरम् ।
नाना-तन्त्र-विधानेन कलावपि यथा शृणु ॥५१॥

इति द्वापर उर्वीश स्तुवन्ति जगदीश्वरम् ।
नाना-तन्त्र-विधानेन कलावपि यथा शृणु ॥५१॥

इति—इस प्रकार; **द्वापरे**—द्वापर युग में; **उरु-ईश**—हे राजन्; **स्तुवन्ति**—वे स्तुति करते हैं; **जगत्-ईश्वरम्**—जगत् के स्वामी; **नाना**—नाना प्रकार के; **तन्त्र**—शास्त्रों के; **विधानेन**—विधानों से; **कलौ**—कलियुग में; **अपि**—भी; **यथा**—जैसे; **शृणु**—कृपया सुनो।

अनुवाद

"हे राजन्, इस प्रकार द्वापर युग में लोगों ने ब्रह्माण्ड के स्वामी की पूजा की। वे कलियुग में भी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की पूजा शास्त्रोक्त विधियों से करते हैं। कृपा करके इसे मुझसे सुनें।"

तात्पर्य

यह श्लोक सन्त करभाजन द्वारा *श्रीमद्भागवत* (११.५.३१) में कहा गया है।

कृष्ण-वर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्र-पार्षदम् ।
यज्ञैः सङ्कीर्तन-प्रायैर्यजन्ति हि सु-मेधसः ॥५२॥

कृष्ण-वर्णम्—कृष्ण अक्षरों को दोहराते हुए; **त्विषा**—अंग कांती; **अकृष्णम्**—काला नहीं (सुनहरा); **स-अङ्ग**—साथियों सहित; **उपाङ्ग**—सेवक; **अस्त्र**—अस्त्र; **पार्षदम्**—पार्षद,

विश्वस्त साथी; **यज्ञैः**—यज्ञ से; **सङ्कीर्तन-प्रायैः**—प्रायः संकीर्तन-युक्त; **यजन्ति**—वे पूजा करते हैं; **हि**—निश्चय ही; **सु-मेधसः**—बुद्धिमान व्यक्ति।

अनुवाद

"कलियुग में बुद्धिमान व्यक्ति ईश्वर के उन अवतार की पूजा करने के लिए सामूहिक कीर्तन करते हैं, जो कृष्ण-नाम का निरन्तर गान करते हैं। यद्यपि उनका शरीर श्यामवर्ण का नहीं है, किन्तु वे स्वयं कृष्ण हैं। उनके साथ उनके पार्षद, सेवक, आयुध तथा विश्वस्त संगी रहते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (११.५.३२) से लिया गया है। श्रील जीव गोस्वामी *भागवत* पर लिखित अपने भाष्य *क्रमसन्दर्भ* में इस श्लोक की टीका करते हुए कहते हैं कि भगवान् कृष्ण सुनहरे शरीर के साथ भी प्रकट होते हैं। ये सुनहरे कृष्ण ही भगवान् चैतन्य हैं, जिनकी पूजा इस युग में बुद्धिमान मनुष्यों द्वारा की जाती है। इसकी पुष्टि गर्गमुनि द्वारा *श्रीमद्भागवत* में की गई है, जिन्होंने कहा है कि यद्यपि बालक कृष्ण श्याम वर्ण के हैं, किन्तु वे अन्य तीन रंगों—लाल, श्वेत तथा पीत में भी प्रकट होते हैं। उन्होंने श्वेत तथा लाल रंग के शरीरों का प्रदर्शन क्रमशः सत्ययुग तथा त्रेतायुग में किया। उन्होंने शेष रंग—पीला-सुनहरा को तब तक प्रदर्शित नहीं किया, जब तक वे श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट नहीं हुए, जिन्हें गौर हरि नाम से जाने जाते हैं।

श्रील जीव गोस्वामी *कृष्णवर्णम्* की व्याख्या श्रीकृष्ण चैतन्य के रूप में करते हैं। *कृष्णवर्ण* तथा कृष्णचैतन्य एक ही हैं। कृष्ण नाम भगवान् कृष्ण तथा चैतन्य कृष्ण दोनों में आता है। श्री चैतन्य महाप्रभु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं, किन्तु वे सदैव कृष्ण का गुणगान करने में लगे रहते हैं और इस तरह उनके नाम तथा रूप का कीर्तन एवं स्मरण करके दिव्य आनन्द प्राप्त करते हैं। भगवान् कृष्ण स्वयं चैतन्य महाप्रभु के रूप में सर्वोच्च उपदेश देने के लिए प्रकट होते हैं।

भगवान् चैतन्य सदैव कृष्ण-नाम का कीर्तन करते हैं और उसका वर्णन भी करते हैं। चूँकि वे स्वयं कृष्ण हैं, अतएव जो भी उनसे मिलेगा वह भी स्वतः कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन करेगा और फिर अन्यों के सामने उसका

वर्णन करेगा। वे मनुष्य में दिव्य कृष्णभावनामृत भर देते हैं, जिससे कीर्तन करने वाला दिव्य आनन्द में निमग्न हो जाता है। इसलिए वे हर प्रकार से हर व्यक्ति के समक्ष प्रत्यक्ष या शब्द द्वारा कृष्ण के रूप में प्रकट होते हैं। केवल श्री चैतन्य का दर्शन करने से ही मनुष्य को तत्काल भगवान् कृष्ण का स्मरण हो आता है। अतएव मनुष्य उन्हें *विष्णुतत्त्व* के रूप में स्वीकार कर सकता है। दूसरे शब्दों में, श्री चैतन्य स्वयं भगवान् कृष्ण हैं।

साङ्गोपाङ्गास्त्र-पार्षदम् से यह भी सूचित होता है कि श्री चैतन्य भगवान् कृष्ण हैं। उनका शरीर चन्दन के आभूषणों एवं चन्दन-लेप से सदैव अलंकृत रहता है। वे अपने अपूर्व सौन्दर्य से अपने युग के सारे लोगों को वशीभूत करते हैं। अन्य अवतारों में भगवान् ने कभी-कभी असुरों को परास्त करने के लिए अस्त्रों का उपयोग किया, किन्तु इस युग में भगवान् अपने सर्व आकर्षक स्वरूप श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में उन्हें परास्त करते हैं। श्रील जीव गोस्वामी बतलाते हैं कि उनका सौन्दर्य ही उनका *अस्त्र* या हथियार है, जिससे असुरों का दमन होता है। चूँकि वे सर्वाकर्षक हैं, अतएव यह समझना चाहिए कि सारे देवता उनके संगियों के रूप में उनके साथ-साथ रहते थे। उनके कार्य असाधारण तथा उनके संगी अलौकिक थे। जब वे *सङ्कीर्तन* आन्दोलन का प्रचार कर रहे थे, तब बंगाल तथा उड़ीसा के अनेक महान् विद्वान तथा आचार्य उनके प्रति आकृष्ट हो गये। चैतन्य महाप्रभु सदैव अपने सर्वश्रेष्ठ पार्षदों यथा नित्यानन्द, अद्वैत, गदाधर तथा श्रीवास के साथ रहते हैं।

श्रील जीव गोस्वामी वैदिक साहित्य से एक श्लोक प्रस्तुत करते हैं, जिसमें यह कहा गया है कि यज्ञों के प्रदर्शन या उत्सव सम्पन्न करने की कोई आवश्यकता नहीं है। उनकी टीका है कि ऐसे बाह्य दिखावों में लगने के स्थान पर लोगों को जाति, रंग, वर्ण आदि का भेदभाव न करके चैतन्य महाप्रभु की पूजा करने के लिए एकसाथ एकत्र होकर हरे कृष्ण कीर्तन करना चाहिए। *कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णम्* बतलाता है कि कृष्ण-नाम को प्रधानता दी जानी चाहिए। भगवान् श्री चैतन्य ने कृष्णभावनामृत की शिक्षा दी और कृष्ण-नाम का कीर्तन किया। अतएव श्री चैतन्य की पूजा करने के लिए सबको मिलकर महामन्त्र का कीर्तन करना चाहिए—हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे

हरे / हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे॥ गिरजाघरों, मन्दिरों या मस्जिदों में पूजा का प्रसार सम्भव नहीं, क्योंकि लोगों की रुचि इस में नहीं रही, किन्तु हरे कृष्ण का कीर्तन कहीं भी और कभी भी किया जा सकता है। इस प्रकार श्री चैतन्य की पूजा करते हुए लोग सर्वोच्च कर्म कर सकते हैं और परमेश्वर को प्रसन्न करने का सर्वोच्च धार्मिक प्रयोजन पूरा कर सकते हैं।

भगवान् श्री चैतन्य के सुप्रसिद्ध शिष्य श्रील सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा है, "दिव्य भक्तियोग के सिद्धान्त के समाप्त हो जाने पर भक्ति-विधि का पुनरुद्धार करने के लिए श्रीकृष्ण चैतन्य प्रकट हुए हैं। वे इतने दयालु हैं कि वे कृष्ण-प्रेम का वितरण कर रहे हैं। हर एक को उनके चरणकमलों के प्रति अधिकाधिक आकृष्ट होना चाहिए, जिस प्रकार गुंजार करती मधुमक्खियाँ कमल के फूल के प्रति आकृष्ट होती हैं।"

শুন, ভাই, এই সব চৈতন্য-মহিমা ।
এই শ্লোকে কহে তাঁর মহিমার সীমা ॥৫৩॥

শুন, ভাই, এই সব চৈতন্য-মহিমা ।
এই শ্লোকে কহে তাঁর মহিমার সীমা ॥৫৩॥

शुन—कृपया सुनो; **भाइ**—भाइयों; **एइ**—यह; **सब**—सब; **चैतन्य**—चैतन्य महाप्रभु की; **महिमा**—महिमाएँ; **एइ**—यह; **श्लोके**—श्लोक; **कहे**—कहता है; **ताँर**—उनकी; **महिमार**—महिमाओं की; **सीमा**—सीमा।

अनुवाद

प्रिय भाइयों, कृपया चैतन्य महाप्रभु की इन सारी महिमाओं को सुनो। यह श्लोक स्पष्टतया उनके कार्यकलापों तथा लक्षणों का सार प्रस्तुत करता है।

'কৃষ্ণ' এই দুই বর্ণ সদা যাঁর মুখে ।
অথবা, কৃষ্ণকে তিঁহো বর্ণে নিজ সুখে ॥৫৪॥

'কৃষ্ণ' এই দুই বর্ণ সদা যাঁর মুখে ।
অথবা, কৃষ্ণকে তিঁহো বর্ণে নিজ সুখে ॥৫৪॥

कृष्ण—कृष्ण; **एइ**—ये; **दुइ**—दोनों; **वर्ण**—अक्षर; **सदा**—सदा; **याँर**—जिनके; **मुखे**—मुख में; **अथवा**—अथवा; **कृष्णके**—भगवान् कृष्ण के; **तिंहो**—वे; **वर्णे**—वर्णन करते हैं; **निज**—अपने स्वयं के; **सुखे**—सुख में।

अनुवाद

'कृष्' तथा 'ण' ये दो अक्षर सदैव उनके मुख में रहते हैं; अथवा, वे अत्यन्त हर्ष के साथ कृष्ण का निरन्तर वर्णन करते हैं।

कृष्ण-वर्ण-शब्देर अर्थ दुइ त प्रमाण ।
कृष्ण विनु ताँर मुखे नाहि आइसे आन ॥५५॥

कृष्ण-वर्ण-शब्देर अर्थ दुइ त प्रमाण ।
कृष्ण विनु ताँर मुखे नाहि आइसे आन ॥५५॥

कृष्ण-वर्ण-शब्देर—'कृष्ण वर्ण' शब्द के; **अर्थ**—अर्थ; **दुइ**—दो; **त**—निश्चित रूप से; **प्रमाण**—प्रमाण, उदाहरण; **कृष्ण**—कृष्ण; **विनु**—के बिना; **ताँर**—उनके; **मुखे**—मुख में; **नाहि आइसे**—नहीं आता; **आन**—अन्य कुछ।

अनुवाद

"कृष्णवर्ण" शब्द के ये ही दो अर्थ हैं। वस्तुतः कृष्ण के अतिरिक्त अन्य कुछ भी उनके मुख से नहीं निकलता।

केह ताँरे बले यदि कृष्ण-वरण ।
आर विशेषणे तार करे निवारण ॥५६॥

केह ताँरे बले यदि कृष्ण-वरण ।
आर विशेषणे तार करे निवारण ॥५६॥

केह—कोई; **ताँरे**—उनको; **बले**—कहता है; **यदि**—यदि; **कृष्ण**—काला; **वरण**—रंग; **आर**—दूसरा; **विशेषणे**—विशेषण में; **तार**—उसका; **करे**—करता है; **निवारण**—निवारण।

अनुवाद

यदि कोई उन्हें श्याम रंग (वर्ण) वाला कहने का प्रयास करता है, तो अगला विशेषण (*त्विषा अकृष्णम्*) तुरन्त ही उसका निवारण करता है।

देह-कान्त्ये हय तेँहो अकृष्ण-वरण ।
अकृष्ण-वरणे कहे पीत-वरण ॥५७॥

देह-कान्त्ये हय तेंहो अकृष्ण-वरण ।
अकृष्ण-वरणे कहे पीत-वरण ॥५७॥

देह-कान्त्ये—शरीर की आभा में; **हय**—है; **तेंहो**—वे; **अकृष्ण**—काले नहीं; **वरण**—रंग; **अकृष्ण-वरणे**—ऐसे रंग से जो काला नहीं; **कहे**—अर्थ है; **पीत**—पीला; **वरण**—वर्ण।

अनुवाद

उनके शरीर की कान्ति निश्चित रूप से श्याम (कृष्ण) नहीं है। वे श्याम नहीं हैं, इससे यह सूचित होता है कि उनका रंग पीला है।

कलौ यं विद्वांसः स्फुटमभियजन्ते द्युति-भराद्
अकृष्णाङ्गं कृष्णं मख-विधिभिरुत्कीर्तन-मयैः ।
उपास्यं च प्राहुर्यमखिल-चतुर्थाश्रम-जुषां
स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु ॥५८॥

कलौ यं विद्वांसः स्फुटमभियजन्ते द्युति-भराद्
अकृष्णाङ्गं कृष्णं मख-विधिभिरुत्कीर्तन-मयैः ।
उपास्यं च प्राहुर्यमखिल-चतुर्थाश्रम-जुषां
स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु ॥५८॥

कलौ—कलियुग में; **यम्**—जिनको; **विद्वांसः**—विद्वान; **स्फुटम्**—स्पष्ट रूप से प्रकट; **अभियजन्ते**—पूजा करते हैं; **द्युति-भरात्**—शारीरिक आभा के आधिक्य के कारण; **अकृष्ण-अङ्गम्**—जिनके अङ्ग काले नहीं हैं; **कृष्णम्**—भगवान् कृष्ण; **मख-विधिभिः**—यज्ञ सम्पन्न करके; **उत्कीर्तन-मयैः**—पवित्र नाम के ऊँचे स्वर के उच्चारण से युक्त; **उपास्यम्**—पूज्य पदार्थ; **च**—और; **प्राहुः**—उन्होंने कहा; **यम्**—जिनको; **अखिल**—सब; **चतुर्थ-आश्रम-जुषाम्**—उन सबके जो संन्यास आश्रम में हैं; **सः**—वे; **देवः**—भगवान्; **चैतन्य-आकृतिः**—चैतन्य महाप्रभु के रूप वाले; **अतितराम्**—बहुत अधिक; **नः**—हम पर; **कृपयतु**—वे कृपा करें।

अनुवाद

"कलियुग में पवित्र नाम के संकीर्तन-यज्ञ द्वारा विद्वान लोग उन भगवान् कृष्ण की पूजा करते हैं, जो श्रीमती राधारानी की भावनाओं के

तीव्र वेग के कारण अब अकृष्ण हैं। वे उन परमहंसों के एकमात्र आराध्य-देव हैं, जिन्होंने चतुर्थ आश्रम (संन्यास) की सर्वोच्च अवस्था प्राप्त कर ली है। ऐसे पूर्ण पुरुषोत्तम चैतन्य महाप्रभु हम पर अपनी अहैतुकी कृपा प्रदर्शित करें।"

तात्पर्य

यह श्लोक *द्वितीय श्री चैतन्याष्टक* १ से है और श्रील रूप गोस्वामी कृत *स्तव-माला* से लिया गया है।

प्रत्यक्ष ताँहार तप्त-काञ्चनेर द्युति ।
याँहार छटाय नाशे अज्ञान-तमस्तति ॥ ५९॥

प्रत्यक्ष ताँहार तप्त-काञ्चनेर द्युति ।
याँहार छटाय नाशे अज्ञान-तमस्तति ॥ ५९ ॥

प्रत्यक्ष—प्रत्यक्ष, स्पष्ट; **ताँहार**—उनका; **तप्त**—पिघला हुआ; **काञ्चनेर**—सोने की; **द्युति**—चमक; **याँहार**—जिसकी; **छटाय**—चमक से; **नाशे**—नष्ट हो जाती है; **अज्ञान**—अज्ञान; **तमस्तति**—अन्धकार की सीमा।

अनुवाद

उनके पिघले सोने जैसे चमकीले रंग को प्रत्यक्ष देखा जा सकता है, जो अज्ञान के अंधकार को दूर करता है।

जीवेर कल्मष-तमो नाश करिबारे ।
अङ्ग-उपाङ्ग-नाम नाना अस्त्र धरे ॥ ६०॥

जीवेर कल्मष-तमो नाश करिबारे ।
अङ्ग-उपाङ्ग-नाम नाना अस्त्र धरे ॥ ६० ॥

जीवेर—जीव का; **कल्मष**—पापमय कर्म; **तमः**—अन्धकार; **नाश करिबारे**—नाश करने हेतु; **अङ्ग**—साथी, पार्षद; **उपाङ्ग**—भक्तगण; **नाम**—पवित्र नाम; **नाना**—विविध; **अस्त्र**—अस्त्र; **धरे**—वे धारण करते हैं।

अनुवाद

जीवों का पापमय जीवन अज्ञान से उत्पन्न होता है। उस अज्ञान को

नष्ट करने के लिए वे अनेक अस्त्र अपने साथ लाये हैं यथा उनके पूर्णांशरूपी पार्षद, उनके भक्त तथा उनका पवित्र नाम।

ভক্তির বিরোধী কর্ম-ধর্ম বা অধর্ম ।
তাহারঽকল্মষ' নাম, সেই মহা-তমঃ ॥ ৬১ ॥

भक्तिर विरोधी कर्म-धर्म वा अधर्म ।
ताहारऽकल्मष' नाम, सेइ महा-तमः ॥ ६१ ॥

भक्तिर—भक्ति के; **विरोधी**—विरोधी; **कर्म**—कर्म; **धर्म**—धार्मिक; **वा**—अथवा; **अधर्म**—अधार्मिक; **ताहार**—उसका; **कल्मष**—पाप; **नाम**—नाम; **सेइ**—यह; **महा-तमः**—महा अंधकार।

अनुवाद

सबसे बड़े अज्ञानरूप वे धार्मिक या अधार्मिक कार्यकलाप हैं, जो भक्ति के विरोधी होते हैं। वे कल्मष अर्थात् पाप कहलाते हैं।

বাহু তুলি' হরি বলি' প্রেম-দৃষ্ট্যে চায় ।
করিয়া কল্মষ নাশ প্রেমেতে ভাসায় ॥ ৬২ ॥

बाहु तुलि' हरि बलि' प्रेम-दृष्ट्ये चाय ।
करिया कल्मष नाश प्रेमेते भासाय ॥ ६२ ॥

बाहु तुलि'—भुजाएँ उठाकर; **हरि बलि'**—पवित्र नाम का कीर्तन करके; **प्रेम-दृष्ट्ये**—गहन प्रेम की उनकी दृष्टि से; **चाय**—वे देखते हैं; **करिया**—करके; **कल्मष**—पापों को; **नाश**—नाश; **प्रेमेते**—ईश्वर प्रेम में; **भासाय**—बाढ़ ला देते हैं।

अनुवाद

अपनी भुजाएँ उठाकर, पवित्र नाम का कीर्तन करते हुए और सबको गहन प्रेम से देखते हुए वे समस्त पापों को दूर कर देते हैं और भगवान् के प्रेम से सबको आप्लावित कर देते हैं।

স্মিতালোকঃ শোকং হরতি জগতাং যস্য পরিতো
গিরাং তু প্রারম্ভঃ কুশল-পটলীং পল্লবয়তি ।

पदालम्भः कं वा प्रणयति न हि प्रेम-निवहं
स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु ॥ ६३ ॥

स्मितालोकः शोकं हरति जगतां यस्य परितो
गिरां तु प्रारम्भः कुशल-पटलीं पल्लवयति ।
पदालम्भः कं वा प्रणयति न हि प्रेम-निवहं
स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु ॥ ६३ ॥

स्मित—मुस्कुराकर; **आलोकः**—दृष्टि; **शोकम्**—शोक; **हरति**—हर लेते हैं; **जगताम्**—जगत् का; **यस्य**—जिसका; **परितः**—चारों ओर; **गिराम्**—वाणी के; **तु**—भी; **प्रारम्भः**—प्रारम्भ; **कुशल**—कुशल; **पटलीम्**—समूह; **पल्लवयति**—प्रल्लवित करता है; **पद-आलम्भः**—चरणकमल पकड़कर; **कम् वा**—जो सम्भवतः; **प्रणयति**—ले जाता है; **न**—नहीं; **हि**—निश्चय ही; **प्रेम-निवहम्**—भगवत् प्रेम की मात्रा; **सः**—वे; **देवः**—भगवान्; **चैतन्य-आकृतिः**—चैतन्य महाप्रभु के रूप में; **अतितराम्**—अत्यन्त; **नः**—हम पर; **कृपयतु**—कृपा करें।

अनुवाद

"श्री चैतन्य के रूप में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हम पर अपनी अहैतुकी कृपा की वृष्टि करें। उनकी स्मितहास्य युक्त दृष्टि तुरन्त ही संसार के सारे शोकों को दूर कर देती है और उनकी वाणी शुभ भक्ति-लताओं को पल्लवित कर जीवन प्रदान करती है। उनके चरणकमलों की शरण लेने से तुरन्त ही दिव्य भगवत्प्रेम का उदय होता है।"

श्री-अङ्ग, श्री-मुख येई करे दरशन ।
तार पाप-क्षय हय, पाय प्रेम-धन ॥ ६४ ॥

श्री-अङ्ग, श्री-मुख येइ करे दरशन ।
तार पाप-क्षय हय, पाय प्रेम-धन ॥ ६४ ॥

श्री-अङ्ग—उनका शरीर; **श्री-मुख**—उनका मुख; **येइ**—कोई जो; **करे**—करता है; **दरशन**—दर्शन; **तार**—उनका; **पाप-क्षय**—पापों का अन्त; **हय**—होता है; **पाय**—पाता है; **प्रेम-धन**—भगवत्प्रेम का धन ।

अनुवाद

जो कोई भी उनके सुन्दर शरीर या सुन्दर मुख का दर्शन करता है,

वह सारे पापों से मुक्त हो जाता है और भगवत्प्रेम रूपी सम्पत्ति को प्राप्त करता है।

অন্য অবতারে সব সৈন্য-শস্ত্র সঙ্গে ।
চৈতন্য-কৃষ্ণের সৈন্য অঙ্গ-উপাঙ্গে ॥ ৬৫ ॥

अन्य अवतारे सब सैन्य-शस्त्र सङ्गे ।
चैतन्य-कृष्णेर सैन्य अङ्ग-उपाङ्गे ॥ ६५ ॥

अन्य—अन्य; **अवतारे**—अवतारों में; **सब**—सब; **सैन्य**—सैनिक; **शस्त्र**—शस्त्र; **सङ्गे**—सहित; **चैतन्य-कृष्णेर**—भगवान् कृष्ण का चैतन्य महाप्रभु के रूप में; **सैन्य**—सैनिक; **अङ्ग**—पूर्ण अंश; **उपाङ्गे**—और साथी।

अनुवाद

अन्य अवतारों में भगवान् सेना तथा अस्त्रों समेत अवतरित हुए, किन्तु इस अवतार में उनकी सेना उनके पूर्ण अंश तथा पार्षद हैं।

সদোপাস্যঃ শ্রীমান্কৃত-মনুজ-কায়ৈঃ প্রণয়িতাং
বহদ্ভির্গীর্বাণৈর্গিরিশ-পরমেষ্ঠি-প্রভৃতিভিঃ ।
স্ব-ভক্তেভ্যঃ শুদ্ধাং নিজ-ভজন-মুদ্রামুপদিশন্
স চৈতন্যঃ কিং মে পুনরপি দৃশোর্যাস্যতি পদম্ ॥ ৬৬ ॥

सदोपास्यः श्रीमान्धृत-मनुज-कायैः प्रणयितां
वहद्भिर्गीर्वाणैर्गिरिश-परमेष्ठि-प्रभृतिभिः ।
स्व-भक्तेभ्यः शुद्धां निज-भजन-मुद्रामुपदिशन्
स चैतन्यः किं मे पुनरपि दृशोर्यास्यति पदम् ॥ ६६ ॥

सदा—सदा; **उपास्यः**—पूज्य; **श्रीमान्**—सुन्दर, श्रीमान्; **धृत**—जिन्होंने स्वीकार किया; **मनुज-कायैः**—मानव शरीर; **प्रनयिताम्**—प्रेम; **वहद्भिः**—जो प्रेम रखते थे; **गिः-वाणैः**—देवताओं से; **गिरिश**—शिवजी; **परमेष्ठि**—ब्रह्माजी; **प्रभृतिभिः**—जिन में प्रमुख थे; **स्व-भक्तेभ्यः**—अपने भक्तों के लिए; **शुद्धाम्**—शुद्ध; **निज-भजन**—अपनी पूजा; **मुद्राम्**—चिह्न; **उपदिशन्**—उपदेश देते हुए; **सः**—वे; **चैतन्यः**—चैतन्य महाप्रभु; **किम्**—क्या; **मे**—मेरा; **पुनः**—फिर; **अपि**—निश्चित रूप से; **दृशोः**—दो नेत्रों का; **यास्यति**—वे जायेंगे; **पदम्**—निवासस्थान।

अनुवाद

"भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु शिवजी तथा ब्रह्माजी समेत समस्त देवताओं के परम आराध्य देव हैं। ये देवता सामान्य मनुष्यों के वेश में उनके प्रति प्रेम प्रदर्शन करते हुए आये। वे अपने भक्तों को अपनी शुद्ध भक्ति का उपदेश देते हैं। क्या वे पुनः मेरे दृष्टिपथ पर विराजमान होंगे?"

तात्पर्य

यह श्लोक श्री रूप गोस्वामी कृत स्तवमाला का प्रथम श्री चैतन्याष्टक १ है।

আঙ্গোপাঙ্গ অস্ত্র করে স্ব-কার্য-সাধন ।
'অঙ্গ'-শব্দের অর্থ আর শুন দিয়া মন ॥ ৬৭ ॥

আঙ্গোপাঙ্গ অস্ত্র করে স্ব-কার্য্য-সাধন ।
'অঙ্গ'-শব্দের অর্থ আর শুন দিয়া মন ॥ ৬৭ ॥

আঙ্গ-উপাঙ্গ—पूर्णांश एवं पार्षद; **অস্ত্র**—अस्त्र; **করে**—करते हैं; **স্ব-কার্য্য**—अपना कार्य; **সাধন**—कर्तव्य; **অঙ্গ-শব্দের**—अङ्ग शब्द का; **অর্থ**—अर्थ; **আর**—अन्य; **শুন**—सुनो; **দিয়া**—देना; **মন**—मन।

अनुवाद

उनके पूर्ण अंश तथा पार्षद अपना निजी विशेष कर्तव्य मानकर उनके अस्त्रों का कार्य करते हैं। कृपया मुझसे "अङ्ग" शब्द का दूसरा अर्थ सुनो।

'অঙ্গ'-শব্দে অংশ কহে শাস্ত্র-পরমাণ ।
অঙ্গের অবয়ব 'উপাঙ্গ'-ব্যাখ্যান ॥ ৬৮ ॥

'অঙ্গ'-শব্দে অংশ কহে শাস্ত্র-পরমাণ ।
অঙ্গের অবয়ব 'উপাঙ্গ'-ব্যাখ্যান ॥ ৬৮ ॥

অঙ্গ-শব্দে—अंग शब्द से; **অংশ**—अंश; **কহে**—कहता है; **শাস্ত্র**—शास्त्र; **পরমাণ**—प्रमाण; **অঙ্গের**—अंग का; **অবয়ব**—भाग; **উপাঙ্গ-ব্যাখ্যান**—उपांग शब्द का वर्णन।

अनुवाद

प्रामाणिक शास्त्रों के प्रमाण के अनुसार शारीरिक 'अंग' भी अंश कहलाता है और अंग के अंश को उपांग कहते हैं।

नारायणस्त्वं न हि सर्व-देहिनाम्
आत्मास्यधीशाखिल-लोक-साक्षी ।
नारायणोऽङ्गं नर-भू-जलायनात्
तच्चापि सत्यं न तवैव माया ॥ ६९ ॥

नारायणः—भगवान् नारायण; **त्वम्**—आप; **न**—नहीं; **हि**—निश्चय ही; **सर्व**—सभी; **देहिनाम्**—देहधारियों के; **आत्मा**—परमात्मा; **असि**—आप हैं; **अधीश**—हे स्वामी; **अखिल-लोक**—सारे विश्व के; **साक्षी**—साक्षी; **नारायणः**—नारायण नाम से; **अङ्गम्**—पूर्णांश; **नर**—नर का; **भू**—उत्पन्न; **जल**—जल में; **अयनात्**—आश्रय-स्थल के कारण; **तत्**—वह; **च**—और; **अपि**—निश्चित रूप से; **सत्यम्**—सर्वोपरि सत्य; **न**—नहीं; **तव**—आपकी; **एव**—ही; **माया**—माया।

अनुवाद

"हे प्रभुओं के प्रभु! आप सारी सृष्टि के द्रष्टा हैं। आप हर एक के परम प्रिय प्राण हैं। तो इसलिए क्या आप मेरे पिता नारायण नहीं हैं? 'नारायण' उसका सूचक है, जिसका निवास नर (गर्भोदकशायी विष्णु) से उत्पन्न जल में है और वे नारायण आपके पूर्ण अंश हैं। आपके सारे पूर्ण अंश दिव्य हैं। वे परम पूर्ण हैं और माया द्वारा सृजित नहीं हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१०.१४.१४) का है, जिसे ब्रह्माजी ने भगवान् कृष्ण से कहा था।

जल-शायी अन्तर्यामी येइ नारायण ।
सेहो तोमार अंश, तुमि मूल नारायण ॥ ७० ॥

जल-शायी अन्तर्य्यामी येइ नारायण ।
सेहो तोमार अंश, तुमि मूल नारायण ॥ ७० ॥

जल-शायी—जलशायी; **अन्तः-यामी**—अन्तर्यामी परमात्मा; **येइ**—वे जो; **नारायण**—भगवान् नारायण; **सेहो**—वे; **तोमार**—आपके; **अंश**—पूर्णांश; **तुमि**—आप; **मूल**—मूल; **नारायण**—नारायण।

अनुवाद

हर एक के हृदय में विद्यमान रहने वाले नारायण तथा जल (कारण, गर्भ तथा क्षीर) में रहने वाले नारायण आपके ही पूर्ण अंश हैं। अतएव आप मूल नारायण हैं।

'अङ्ग'-शब्दे अंश कहे, सेहो सत्य हय ।
माया-कार्य नहे—सब चिदानन्द-मय ॥ ७१ ॥

'अङ्ग'-शब्दे अंश कहे, सेहो सत्य हय ।
माया-कार्य्य नहे—सब चिदानन्द-मय ॥ ७१ ॥

अङ्ग-शब्दे—अंग शब्द से; **अंश**—पूर्णांश; **कहे**—अर्थात्; **सेहो**—वह; **सत्य**—सत्य; **हय**—है; **माया**—भौतिक शक्ति का; **कार्य्य**—कार्य; **नहे**—नहीं है; **सब**—सब; **चित्-आनन्द-मय**—ज्ञान और आनन्द से युक्त।

अनुवाद

'अंग' शब्द निश्चय ही पूर्ण अंश का सूचक है। ऐसे प्राकट्यों को कभी भी भौतिक प्रकृति की उपज नहीं मानना चाहिए, क्योंकि वे सभी दिव्य, ज्ञान एवं आनन्द से पूर्ण हैं।

तात्पर्य

भौतिक जगत् में यदि किसी मूल पदार्थ से एक अंश (अंग) लिया जाये, तो उस मूल पदार्थ में कमी आ जाती है। किन्तु पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् पर माया के कार्यों का लेशमात्र भी प्रभाव नहीं पड़ता। *ईशोपनिषद्* कहती है :

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

"भगवान् परम पूर्ण हैं और चूँकि वे परम पूर्ण हैं, अतएव उनसे जितने भी उद्भव होते हैं, यथा यह घटनामय जगत्, फिर भी वे परम पूर्ण रहते हैं। परम

पूर्ण से जो भी उत्पन्न होता है, वह अपने आप में भी पूर्ण होता है। चूँकि वे परम पूर्ण हैं, अतएव उनमें से अनेक पूर्ण इकाइयाँ प्रकट होने पर भी वे पूर्ण शेष बने रहते हैं।" (*ईशोपनिषद्*, मंगलाचरण)

परम सत्य की दुनिया में एक और एक मिलकर एक होता है और एक में से एक घटाने पर भी एक ही बचा रहता है। अतएव मनुष्य को भौतिकता की दृष्टि से परमेश्वर के अंश की कल्पना नहीं करनी चाहिए। आध्यात्मिक जगत् में भौतिक शक्ति का कोई प्रभाव नहीं होता एवं अंश की भौतिक गणना नहीं होती। *भगवद्गीता* के पन्द्रहवें अध्याय में भगवान् कहते हैं कि सारे जीव उनके अंश हैं। भौतिक तथा आध्यात्मिक जगतों में असंख्य जीव हैं, किन्तु फिर भी भगवान् कृष्ण अपने आपमें पूर्ण रहते हैं। यह सोचना भ्रम होगा कि भगवान् के अंश सारे ब्रह्माण्ड में परिव्याप्त हैं, अतएव भगवान् अपना व्यक्तित्व खो बैठे हैं। यह तो भौतिक गणना है। ऐसी गणनाएँ केवल भौतिक शक्ति माया के प्रभाव के अधीन सम्भव हैं। आध्यात्मिक जगत् में भौतिक शक्ति की अनुभूति केवल उसकी अनुपस्थिति से ही होती है।

विष्णुतत्त्व कोटि में एक विस्तार से दूसरा विस्तार होने से शक्ति का क्षय नहीं होता, ठीक उसी तरह जिस प्रकार एक दीपक से दूसरा दीपक जलाने पर प्रकाश का क्षय नहीं होता। मूल दीपक से हजारों दीपक जलाये जा सकते हैं और हर दीपक की शक्ति समान होगी। इस तरह यह समझना चाहिए कि कृष्ण तथा भगवान् चैतन्य से लेकर राम, नृसिंह, वराह आदि जितने भी विभिन्न विष्णु तत्त्व विभिन्न युगों में प्रकट होते हैं, वे समान परम शक्ति से सम्पन्न होते हैं।

ब्रह्माजी तथा शिवजी जैसे देवता भौतिक शक्ति माया के संसर्ग में आते हैं, अतएव उनकी शक्तियाँ विभिन्न स्तरों की होती हैं। किन्तु विष्णु के समस्त अवतार शक्ति में समान होते हैं, क्योंकि माया का प्रभाव उनके निकट तक नहीं आ सकता।

অদ্বৈত, নিত্যানন্দ—চৈতন্যের দুই অঙ্গ ।
অঙ্গের অবয়ব-গণ কহিয়ে উপাঙ্গ ॥৭২॥

अद्वैत, नित्यानन्द—चैतन्येर दुइ अङ्ग ।
अङ्गेर अवयव-गण कहिये उपाङ्ग ॥ ७२ ॥

अद्वैत—अद्वैताचार्य; **नित्यानन्द**—नित्यानन्द प्रभु; **चैतन्येर**—चैतन्य महाप्रभु के; **दुइ**—दोनों; **अङ्ग**—अंग, भाग; **अङ्गेर**—अंगों का; **अवयव-गण**—भाग; **कहिये**—मैं कहता हूँ; **उपाङ्ग**—भाग।

अनुवाद

श्री अद्वैत प्रभु और श्री नित्यानन्द प्रभु दोनों ही चैतन्य महाप्रभु के पूर्ण अंश हैं। इस प्रकार वे उनके शरीर के अंग हैं। इन दोनों अंगों के अंश उपांग कहलाते हैं।

অঙ্গোপাঙ্গ তীক্ষ্ণ অস্ত্র প্রভুর সহিতে ।
সেই সব অস্ত্র হয় পাষণ্ড দলিতে ॥ ৭৩ ॥

अङ्गोपाङ्ग तीक्ष्ण अस्त्र प्रभुर सहिते ।
सेइ सब अस्त्र हय पाषण्ड दलिते ॥ ७३ ॥

अङ्ग-उपाङ्ग—पूर्ण अंश एवं अंश; **तीक्ष्ण**—तीक्ष्ण; **अस्त्र**—अस्त्र; **प्रभुर सहिते**—चैतन्य महाप्रभु सहित; **सेइ**—वे; **सब**—सब; **अस्त्र**—अस्त्र; **हय**—हैं; **पाषण्ड**—नास्तिक; **दलिते**—नष्ट करने के लिए।

अनुवाद

इस तरह भगवान् अपने अंगों तथा उपांगों रूपी तीक्ष्ण अस्त्रों से सुसज्जित हैं। ये सारे अस्त्र श्रद्धाविहीन नास्तिकों का दलन करने में सक्षम हैं।

तात्पर्य

यहाँ पर *पाषण्ड* शब्द अत्यन्त सार्थक है। जो व्यक्ति पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की तुलना देवताओं से करता है, वह *पाषण्ड* कहलाता है। ये *पाषण्ड* व्यक्ति परमेश्वर को संसारी स्तर तक नीचे लाने का प्रयास करते हैं। ये कभी-कभी अपना कल्पित भगवान् ला खड़ा करते हैं या किसी सामान्य व्यक्ति को भगवान् मानकर उसका भगवान् होने का विज्ञापन करते हैं। ये इतने मूर्ख होते हैं कि किसी को चैतन्य या कृष्ण का अगला अवतार बताते हैं, भले ही उसके कार्यकलाप प्रामाणिक अवतार से कितने ही विपरीत क्यों न हों। इस तरह वे

अबोध जनता को मूर्ख बनाते हैं। जो व्यक्ति बुद्धिमान है और वैदिक ग्रन्थों के आधार पर भगवान् के लक्षणों का अध्ययन करता है, वह इन पाषण्डों द्वारा मोहग्रस्त नहीं हो सकता।

पाषण्ड या नास्तिक व्यक्ति भगवान् की लीलाओं या भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति को नहीं समझ सकते। उनकी समझ में भक्ति सामान्य सकाम कर्म से श्रेष्ठतर नहीं है। किन्तु जैसाकि *भगवद्गीता* (४.८) में पुष्टि हुई है, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तथा उनके भक्त पुण्यात्माओं की रक्षा करते हैं और दुष्टों को दण्ड देते हैं (*परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्*) और इस तरह इन मूर्ख नास्तिकों पर नियन्त्रण रखते हैं। दुष्टजन सदैव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का निषेध करने की चेष्टा करते हैं और भक्ति के मार्ग में बाधाएँ उत्पन्न करते हैं। किन्तु भगवान् अपने प्रामाणिक प्रतिनिधियों को भेजते हैं और इस मूर्खता को नियन्त्रित करने के लिए स्वयं अवतरित होते हैं।

নিত্যানন্দ গোসাঞি সাক্ষাৎ হলধর ।
অদ্বৈত আচার্য গোসাঞি সাক্ষাতীশ্বর ॥৭৪॥

নিত্যানন্দ গোসাঞি সাক্ষাত্ হলধর ।
অদ্বৈত আচার্য্য গোসাঞি সাক্ষাতীশ্বর ॥৭৪॥

নিত্যানন্দ গোসাঞি—भगवान् नित्यानन्द गोसांइ; **साक्षात्**—साक्षात्; **हल-धर**—हलधर, भगवान् बलराम; **अद्वैत आचार्य्य गोसाञि**—श्री अद्वैताचार्य गोसांइ; **साक्षात्**—साक्षात्; **ईश्वर**—भगवान्।

अनुवाद

श्री नित्यानन्द गोसांइ साक्षात् हलधर (भगवान् बलराम) हैं और अद्वैत आचार्य साक्षात् ईश्वर हैं।

শ্রীবাসাদি পারিষদ সৈন্য সঙ্গে লঞা ।
দুই সেনা-পতি বুলে কীর্তন করিয়া ॥৭৫॥

শ্রীবাসাদি পারিষদ সৈন্য সঙ্গে লঞা ।
দুই সেনা-পতি বুলে কীর্তন করিয়া ॥৭৫॥

श्रीवास-आदि—श्रीवास आदि; **पारिषद**—पार्षद; **सैन्य**—सैनिक; **सङ्गे**—के साथ; **लञा**—ले जाकर; **दुइ**—दोनों; **सेना-पति**—सेनापति; **बुले**—यात्रा करते हैं; **कीर्तन करिया**—पावन नाम का कीर्तन करते हुए।

अनुवाद

ये दोनों सेनापति, श्रीवास ठाकुर जैसे अपने सैनिकों के साथ, पवित्र भगवन्नाम का कीर्तन करते हुए सर्वत्र विचरण करते हैं।

पाषण्ड-दलन-वाना नित्यानन्द राय ।
आचार्य-हुङ्कारे पाप-पाषण्डी पलाय ॥७६॥

पाषण्ड-दलन-वाना नित्यानन्द राय ।
आचार्य्य-हुङ्कारे पाप-पाषण्डी पलाय ॥७६॥

पाषण्ड-दलन—नास्तिकों के दमन के; **वाना**—लक्षण वाले; **नित्यानन्द**—भगवान् नित्यानन्द; **राय**—सन्माननीय; **आचार्य्य**—अद्वैताचार्य के; **हुङ्कारे**—युद्ध की ललकार; **पाप**—पाप; **पाषण्डी**—और नास्तिक; **पलाय**—पलायन कर जाते हैं।

अनुवाद

नित्यानन्द प्रभु के स्वरूप से ही सूचित होता है कि वे पाषण्डियों के दलनकर्ता हैं। अद्वैत आचार्य की ऊंची गर्जना से सारे पाप तथा सारे पाषण्डी भाग खड़े होते हैं।

सङ्कीर्तन-प्रवर्तक श्री-कृष्ण-चैतन्य ।
सङ्कीर्तन-यज्ञे ताँरे भजे, सेइ धन्य ॥७७॥

सङ्कीर्तन-प्रवर्तक श्री-कृष्ण-चैतन्य ।
सङ्कीर्तन-यज्ञे ताँरे भजे, सेइ धन्य ॥७७॥

सङ्कीर्तन-प्रवर्तक—संकीर्तन के प्रवर्तक; **श्री-कृष्ण-चैतन्य**—भगवान् चैतन्य महाप्रभु; **सङ्कीर्तन**—संकीर्तन; **यज्ञे**—यज्ञ से; **ताँरे**—उनकी; **भजे**—पूजा करते हैं; **सेइ**—वे; **धन्य**—भाग्यशाली।

अनुवाद

भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य संकीर्तन (भगवन्नाम के सामूहिक कीर्तन)

के प्रवर्तक हैं। जो संकीर्तन के माध्यम से उनकी पूजा करता है, वह निस्सन्देह भाग्यवान है।

सेइ त' सुमेधा, आर कुबुद्धि संसार ।
सर्व-यज्ञ हैते कृष्ण-नाम-यज्ञ सार ॥७८॥

सेइ त' सुमेधा, आर कुबुद्धि संसार ।
सर्व-यज्ञ हैते कृष्ण-नाम-यज्ञ सार ॥७८॥

सेइ—वे; **त'**—निश्चय ही; **सु-मेधा**—बुद्धिमान; **आर**—अन्य; **कु-बुद्धि**—दुर्बुद्धि; **संसार**—भौतिक जगत् में; **सर्व-यज्ञ हैते**—अन्य सभी यज्ञों की अपेक्षा; **कृष्ण-नाम**—भगवान् कृष्ण के नाम जप का; **यज्ञ**—यज्ञ; **सार**—सर्वोत्तम।

अनुवाद

ऐसा व्यक्ति सचमुच बुद्धिमान है, जबकि अन्य अल्पज्ञानी व्यक्तियों को जन्म-मृत्यु के चक्र को भोगना पड़ता है। समस्त यज्ञों में भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन सर्वश्रेष्ठ यज्ञ है।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु संकीर्तन आन्दोलन के जनक एवं प्रवर्तक हैं। जो व्यक्ति संकीर्तन आन्दोलन के निमित्त अपना जीवन, धन, बुद्धि तथा वाणी समर्पित करके उनकी पूजा करता है, उसे भगवान् मान्यता देते हैं और आशीर्वाद प्रदान करते हैं। अन्य सारे लोग मूर्ख कहे जा सकते हैं, क्योंकि जिन सारे यज्ञों में मनुष्य अपनी शक्ति लगाता है, उनमें से संकीर्तन आन्दोलन के लिए किया गया यज्ञ सर्वाधिक यशस्वी है।

कोटि अश्वमेध एक कृष्ण नाम सम ।
येई कहे, से पाषण्डी, दण्डे तारे यम ॥७९॥

कोटि अश्वमेध एक कृष्ण नाम सम ।
येइ कहे, से पाषण्डी, दण्डे तारे यम ॥७९॥

कोटि—करोड़; **अश्वमेध**—अश्वमेध यज्ञ; **एक**—एक; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण का; **नाम**—नाम; **सम**—बराबर, समान; **येइ**—जो; **कहे**—कहता है; **से**—वह; **पाषण्डी**—नास्तिक; **दण्डे**—दण्ड (सजा) देते हैं; **तारे**—उसको; **यम**—यमराज।

अनुवाद

जो व्यक्ति यह कहता है कि एक करोड़ अश्वमेध यज्ञ भगवान् कृष्ण के पवित्र नाम के कीर्तन के तुल्य है, वह निश्चित रूप से नास्तिक है। उसे यमराज अवश्य दण्डित करते हैं।

तात्पर्य

भगवान् के पवित्र नाम, हरे कृष्ण के कीर्तन में जिन दस अपराधों की सूची बताई गई है, उसमें आठवाँ अपराध *धर्मव्रतत्यागहुतादिसर्वशुभक्रियासाम्यमपि प्रमादः* है। ईश्वर के पवित्र नाम कीर्तन की तुलना ब्राह्मणों या सन्तों को दान देने, परोपकारी शैक्षिक संस्थान खोलने, मुफ्त भोजन बाँटने जैसे पुण्यकार्यों से नहीं करनी चाहिए। पुण्यकार्यों का फल कभी भी कृष्ण के पवित्र नाम के कीर्तन की तुलना नहीं कर सकता।

वैदिक शास्त्रों का कथन है :

गोकोटिदानं ग्रहणे खगस्य
प्रयागगङ्गोदककल्पवासः।
यज्ञायुतं मेरुसुवर्णदानं
गोविन्दकीर्तेर न समं शतांशैः॥

"यदि कोई सूर्यग्रहण के समय एक करोड़ गायें भी दान में दे, यदि वह गंगा-यमुना के संगम में करोड़ वर्ष तक निवास करे, या यज्ञ में ब्राह्मणों को स्वर्ण का पर्वत दान दे दे, तो भी वह हरे-कृष्ण के कीर्तन से प्राप्त होने वाले लाभ का शतांश भी अर्जित नहीं कर सकता।" दूसरे शब्दों में, जो व्यक्ति हरे कृष्ण कीर्तन को एक पुण्यकर्म मानता है, वह पूर्णतया दिग्भ्रमित है। निस्सन्देह, यह पुण्य है, किन्तु वास्तविकता तो यह है कि कृष्ण तथा उनका नाम दिव्य होने के कारण समस्त संसारी पुण्यकार्यों से सर्वथा परे हैं। पुण्यकर्म भौतिक स्तर पर होता है, किन्तु कृष्ण-नाम का कीर्तन नितान्त आध्यात्मिक स्तर पर होता है। अतएव, भले ही पाषण्डी इसे न समझें, किन्तु पुण्यकर्म कभी भी नाम-कीर्तन की समता नहीं कर सकता।

'भागवत-सन्दर्भ'-ग्रन्थेर मङ्गलाचरणे ।
ए-श्लोक जीव-गोसाञि करियाछेन व्याख्याने ॥ ८० ॥

'भागवत-सन्दर्भ'-ग्रन्थेर मङ्गलाचरणे ।
ए-श्लोक जीव-गोसाञि करियाछेन व्याख्याने ॥ ८० ॥

भागवत-सन्दर्भ-ग्रन्थेर—भागवत सन्दर्भ नामक ग्रंथ के; **मङ्गल-आचरणे**—मंगलाचरण में; **ए-श्लोक**—यह श्लोक; **जीव-गोसाञि**—जीव गोस्वामी; **करियाछेन**—किया है; **व्याख्याने**—वर्णन में।

अनुवाद

***भागवत-सन्दर्भ* के मंगलाचरण में श्रील जीव गोस्वामी ने इसकी व्याख्या में निम्नलिखित श्लोक दिया है।**

अन्तः कृष्णं बहिर्गौरं दर्शिताङ्गादि-वैभवम् ।
कलौ सङ्कीर्तनाद्यैः स्म कृष्ण-चैतन्यमाश्रिताः ॥ ८१ ॥

अन्तः कृष्णं बहिर्गौरं दर्शिताङ्गादि-वैभवम् ।
कलौ सङ्कीर्तनाद्यैः स्म कृष्ण-चैतन्यमाश्रिताः ॥ ८१ ॥

अन्तः—अन्दर से; **कृष्णम्**—भगवान् कृष्ण; **बहिः**—बाहर से; **गौरम्**—श्वेत वर्ण वाले; **दर्शित**—दर्शाया; **अङ्ग**—अंग; **आदि**—आरम्भ होकर; **वैभवम्**—विस्तार; **कलौ**—कलियुग में; **सङ्कीर्तन-आद्यैः**—संकीर्तन आदि से; **स्म**—निश्चित रूप से; **कृष्ण-चैतन्यम्**—चैतन्य महाप्रभु को; **आश्रिताः**—आश्रित।

अनुवाद

"मैं भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु का आश्रय ग्रहण करता हूँ, जो बाहर से गौर वर्ण के हैं, किन्तु भीतर से स्वयं कृष्ण हैं। इस कलियुग में वे भगवान् के पवित्र नाम का संकीर्तन करके अपने विस्तारों अर्थात् अपने अंगों तथा उपांगों का प्रदर्शन करते हैं।

तात्पर्य

श्रील जीव गोस्वामी ने श्लोक ५२ में उद्धृत *श्रीमद्भागवत* के श्लोक (*कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णम्...*) को अपने ग्रंथ *भागवत-सन्दर्भ* या *षट्-सन्दर्भ* के मंगलाचरण के रूप में दिया है। यह श्लोक (८१) भी उन्हीं का है, जो *भागवत* के श्लोक की उसी ग्रन्थ के दूसरे श्लोक के रूप में व्याख्या ही है। *श्रीमद्भागवत*

का यह श्लोक नौ महर्षियों में से एक श्री करभाजन द्वारा कहा गया है और इसकी विस्तृत व्याख्या जीव गोस्वामी के ग्रंथ *षट्-सन्दर्भ* की टीका *सर्वसंवादिनी* में दी हुई है।

अन्तः कृष्ण उस व्यक्ति का निर्देश करता है, जो निरन्तर कृष्ण का चिन्तन करता है। यह श्रीमती राधारानी का प्रधान गुण है। यद्यपि अनेक भक्त सदैव कृष्ण का चिन्तन करते हैं, किन्तु वे गोपियों से आगे नहीं जा सकते। गोपियों में श्रीमती राधारानी कृष्ण का चिन्तन करनेवालों में सर्वप्रमुख हैं। श्रीमती राधारानी की कृष्ण-चेतना अन्य सारे भक्तों की चेतना से बढ़कर है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने कृष्ण को समझने के लिए श्रीमती राधारानी का स्थान ग्रहण किया; अतएव वे सदैव राधारानी के ही समान सदैव कृष्ण का चिन्तन करते रहे। भगवान् कृष्ण के चिन्तन द्वारा वे सदैव कृष्ण को आवृत किये रहे।

श्रीकृष्ण चैतन्य जो ऊपर से गौर वर्ण के थे और जिनका रंग पिघले सोने जैसा था, उन्होंने अपने नित्य पार्षदों, ऐश्वर्यों, अंशों तथा अवतारों को एकसाथ प्रकट किया। उन्होंने हरे-कृष्ण-कीर्तन की विधि का प्रचार किया और जो उनके चरणकमलों का आश्रय लेते हैं, वे धन्य हैं।

उप-पुराणेह शुनि श्री-कृष्ण-वचन ।
कृपा करि व्यास प्रति करियाछेन कथन ॥ ८२॥

उप-पुराणेह शुनि श्री-कृष्ण-वचन ।
कृपा करि व्यास प्रति करियाछेन कथन ॥ ८२॥

उप-पुराणेह—उपपुराणों में; **शुनि**—हम सुनते हैं; **श्री-कृष्ण-वचन**—भगवान् कृष्ण के वचन; **कृपा करि**—कृपा करके; **व्यास प्रति**—व्यास देव के प्रति; **करियाछेन**—उन्हों ने की; **कथन**—बोले।

अनुवाद

उपपुराणों में हम श्रीकृष्ण को व्यासदेव पर यह कहकर अपनी कृपा प्रदर्शित करते सुनते हैं।

अहमेव क्वचिद्ब्रह्मन्सन्न्यासाश्रममाश्रितः ।
हरि-भक्तिं ग्राहयामि कलौ पाप-हतान्नरान् ॥ ८३॥

अहमेव क्वचिद्ब्रह्मन्सन्यासाश्रममाश्रितः ।
हरि-भक्तिं ग्राहयामि कलौ पाप-हतान्नरान् ॥ ८३ ॥

अहम्—मैं; **एव**—निश्चय ही; **क्वचित्**—कहीं; **ब्रह्मन्**—हे ब्राह्मण; **सन्यास-आश्रमम्**—संन्यास आश्रम का; **आश्रितः**—आश्रय लेकर; **हरि-भक्तिम्**—भगवद् भक्ति; **ग्राहयामि**—मैं दूंगा; **कलौ**—कलियुग में; **पाप-हतान्**—पापियों को; **नरान्**—मनुष्यों को।

अनुवाद

"हे विद्वान ब्राह्मण, कभी-कभी मैं कलियुग के पतित लोगों को भगवद्भक्ति के लिए प्रेरित करने हेतु संन्यास आश्रम ग्रहण करता हूँ।"

ভাগবত, ভারত-শাস্ত্র, আগম, পুরাণ ।
চৈতন্য-কৃষ্ণ-অবতারে প্রকট প্রমাণ ॥ ৮৪ ॥

भागवत, भारत-शास्त्र, आगम, पुराण ।
चैतन्य-कृष्ण-अवतारे प्रकट प्रमाण ॥ ८४ ॥

भागवत—*श्रीमद्भागवतम्;* **भारत-शास्त्र**—महाभारत; **आगम**—वैदिक साहित्य; **पुराण**—पुराण; **चैतन्य**—चैतन्य महाप्रभु के रूप में; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण के; **अवतारे**—अवतार में; **प्रकट**—प्रकट किया; **प्रमाण**—प्रमाण।

अनुवाद

***श्रीमद्भागवत,* महाभारत, पुराण तथा अन्य वैदिक साहित्य यह सिद्ध करने के लिए प्रमाण देते हैं कि श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु कृष्ण के अवतार हैं।**

প্রত্যক্ষে দেখহ নানা প্রকট প্রভাব ।
অলৌকিক কর্ম, অলৌকিক অনুভাব ॥ ৮৫ ॥

प्रत्यक्षे देखह नाना प्रकट प्रभाव ।
अलौकिक कर्म, अलौकिक अनुभाव ॥ ८५ ॥

प्रत्यक्षे—प्रत्यक्ष रूप में; **देखह**—जरा देखो; **नाना**—विविध; **प्रकट**—प्रकट; **प्रभाव**—प्रभाव; **अलौकिक**—अलौकिक; **कर्म**—कर्म; **अलौकिक**—अलौकिक; **अनुभाव**—कृष्णभावनामृत में अनुभूति।

अनुवाद

कोई भी व्यक्ति भगवान् चैतन्य के प्रकट प्रभाव को उनके असाधारण कार्यों तथा असामान्य कृष्ण-भावानुभूति से भी प्रत्यक्ष देख सकता है।

देखिया ना देखे यत अभक्तेर गण ।
उलूके ना देखे येन सूर्येर किरण ॥ ८६॥

देखिया ना देखे यत अभक्तेर गण ।
उलूके ना देखे येन सूर्येर किरण ॥ ८६॥

देखिया—देखकर; **ना देखे**—वे नहीं देखते हैं; **यत**—सब कुछ; **अभक्तेर**—अभक्तों का; **गण**—समूह; **उलूके**—उल्लू; **ना देखे**—नहीं देखता है; **येन**—जैसे; **सूर्येर**—सूर्य की; **किरण**—किरणें।

अनुवाद

किन्तु श्रद्धाविहीन अभक्त लोग स्पष्ट दिखाई देने वाली वस्तु को भी नहीं देखते, जिस तरह उल्लू सूर्य की किरणों को नहीं देखते।

त्वां शील-रूप-चरितैः परम-प्रकृष्टैः
सत्त्वेन सात्त्विकतया प्रबलैश्च शास्त्रैः ।
प्रख्यात-दैव-परमार्थ-विदां मतैश्च
नैवासुर-प्रकृतयः प्रभवन्ति बोद्धुम् ॥ ८७॥

त्वां शील-रूप-चरितैः परम-प्रकृष्टैः
सत्त्वेन सात्त्विकतया प्रबलैश्च शास्त्रैः ।
प्रख्यात-दैव-परमार्थ-विदां मतैश्च
नैवासुर-प्रकृतयः प्रभवन्ति बोद्धुम् ॥ ८७॥

त्वाम्—आप; **शील**—चरित्र; **रूप**—रूप; **चरितैः**—कार्यों से; **परम**—परम; **प्रकृष्टैः**—श्रेष्ठ; **सत्त्वेन**—विशेष शक्ति से; **सात्त्विकतया**—सत्त्वगुण से; **प्रबलैः**—प्रबल; **च**—तथा; **शास्त्रैः**—शास्त्रों से; **प्रख्यात**—प्रसिद्ध (से); **दैव**—दैवी; **परम-अर्थ-विदाम्**—वे जो परम लक्ष्य को जानते हैं; **मतैः**—मतों से; **च**—तथा; **न**—नहीं; **एव**—निश्चित रूप से; **आसुर-प्रकृतयः**—आसुरी प्रकृति वाले; **प्रभवन्ति**—समर्थ हैं; **बोद्धुम्**—जानने के लिए।

अनुवाद

"हे प्रभु, जो लोग आसुरी वृत्तियों से प्रभावित हैं, वे आपकी अनुभूति नहीं कर सकते। यद्यपि आप अपने महान् कार्यों, रूपों, चरित्र तथा असामान्य शक्ति के कारण स्पष्ट रूप से सर्वश्रेष्ठ हैं, जिनकी पुष्टि सभी सात्विक शास्त्रों और दिव्य प्रकृति वाले विख्यात अध्यात्मवादियों द्वारा होती है।"

तात्पर्य

यह श्लोक रामानुजाचार्य के गुरु श्री यामुनाचार्य कृत *स्तोत्र-रत्न* (१२) से है। प्रामाणिक शास्त्रों में कृष्ण के दिव्य कार्य, लक्षण, स्वरूप, गुण आदि का वर्णन रहता है और विश्व के सर्वाधिक प्रामाणिक शास्त्र *भगवद्गीता* में स्वयं कृष्ण अपना वर्णन करते हैं। यही नहीं, *वेदान्त-सूत्र* का भाष्य कहलाने वाले *श्रीमद्भागवत* में कृष्ण की और अधिक व्याख्या मिलती है। इस तरह श्रीकृष्ण को इन प्रामाणिक शास्त्रों ने पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में स्वीकार किया है, मनुष्यों की स्वीकृति मात्र के माध्यम से नहीं। आधुनिक युग में एक वर्ग के मूर्ख सोचते हैं कि वे किसी को भी ईश्वर के पद पर उसी तरह निर्वाचित कर सकते हैं, जिस प्रकार वे किसी को राजनैतिक प्रशासन के सर्वोच्च पद पर निर्वाचित कर सकते हैं। लेकिन दिव्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का सम्यक् वर्णन प्रामाणिक शास्त्रों में किया गया है। *भगवद्गीता* में भगवान् कहते हैं कि केवल मूर्ख ही यह सोचकर उनका उपहास करते हैं कि कोई भी व्यक्ति कृष्ण की तरह बोल सकता है।

ऐतिहासिक सन्दर्भों के अनुसार भी कृष्ण के कार्यकलाप अतीव असाधारण हैं। कृष्ण ने पुष्टि की है, "मैं ईश्वर हूँ" और उन्होंने तदनुसार कार्य भी किया है। मायावादी सोचते हैं कि हर व्यक्ति ईश्वर होने का दावा कर सकता है, किन्तु यह उनका भ्रम है, क्योंकि कृष्ण के अतिरिक्त दूसरा कोई भी ऐसे असाधारण कार्य नहीं कर सकता। जब वे अपनी माता की गोद में शिशु थे, तब उन्होंने पूतना राक्षसी का वध किया। तत्पश्चात् उन्होंने तृणावर्त, वत्सासुर तथा बक नामक राक्षसों का वध किया। जब वे कुछ बड़े हुए, तब उन्होंने

अघासुर तथा ऋषभासुर को मारा। अतएव ईश्वर प्रारम्भ से ही ईश्वर होते हैं। ध्यान करने से कोई ईश्वर बन सकता है, ऐसा विचार हास्यास्पद है। भले ही कोई कठिन प्रयास से ईश्वरीय प्रकृति का अनुभव कर ले, किन्तु वह ईश्वर कभी नहीं बन पाएगा। जो असुर यह सोचते हैं कि कोई भी ईश्वर बन सकता है, वे निन्दनीय हैं।

प्रामाणिक शास्त्रों की रचना व्यासदेव, नारद, असित तथा पराशर जैसे महापुरुषों द्वारा की गई है, जो साधारण पुरुष नहीं हैं। वैदिक जीवन-शैली के समस्त अनुयायियों ने इन विख्यात पुरुषों को स्वीकार किया है, जिनके प्रामाणिक शास्त्र वैदिक साहित्य के अनुरूप हैं। फिर भी असुर उनके कथनों पर विश्वास नहीं करते और जान-बूझकर पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् तथा उनके भक्तों का विरोध करते हैं। आजकल सामान्य व्यक्तियों को तथाकथित ईश्वर अवतार के रूप में कुछ मनमाने शब्दों को लिख देने का और अन्य साधारण व्यक्तियों द्वारा उसे प्रामाणिक मान लेने की रीति चल पड़ी है। इस आसुरी मनोवृत्ति की भर्त्सना *भगवद्गीता* के सातवें अध्याय में की गई है, जहाँ यह कहा गया है कि जो दुष्ट तथा अधम हैं, जो मूर्ख तथा गधे हैं, वे अपनी आसुरी प्रकृति के कारण पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर को स्वीकार नहीं कर सकते। उनकी तुलना *उलूकों* (उल्लुओं) से की गई है, जो सूर्य के प्रकाश में अपनी आँखें नहीं खोल सकते। चूँकि वे सूर्य-प्रकाश को नहीं सह सकते, अतएव वे अपने आपको सूर्य से छिपाते फिरते हैं और कभी उसका दर्शन नहीं करते। उन्हें विश्वास ही नहीं होता कि ऐसा कोई प्रकाश है भी।

आपना लुकाइते कृष्ण नाना यत्न करे ।
तथापि ताँहार भक्त जानये ताँहारे ॥ ८८ ॥

आपना लुकाइते कृष्ण नाना यत्न करे ।
तथापि ताँहार भक्त जानये ताँहारे ॥ ८८ ॥

आपना—अपने आपको; **लुकाइते**—छुपाना; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **नाना**—विविध; **यत्न**—प्रयत्न; **करे**—करते हैं; **तथापि**—तथापि; **ताँहार**—उनके; **भक्त**—भक्तगण; **जानये**—जान जाते हैं; **ताँहारे**—उन्हें।

अनुवाद

भगवान् श्रीकृष्ण अपने आपको छिपाने का प्रयत्न अनेक प्रकार से करते हैं, फिर भी उनके भक्त उन्हें यथार्थ रूप में जान ही लेते हैं।

उल्लङ्घित-त्रिविध-सीम-समातिशायि-
सम्भावनं तव परिव्रढ़िम-स्वभावम् ।
माया-बलेन भवतापि निगुह्यमानं
पश्यन्ति केचिदनिशं त्वदनन्य-भावाः ॥८९॥

**उल्लङ्घित-त्रिविध-सीम-समातिशायि-
सम्भावनं तव परिव्रढ़िम-स्वभावम् ।
माया-बलेन भवतापि निगुह्यमानं
पश्यन्ति केचिदनिशं त्वदनन्य-भावाः ॥८९॥**

उल्लङ्घित—उल्लंघित; **त्रि-विध**—तीन प्रकार; **सीम**—सीमाएँ; **सम**—समान; **अतिशायि**—और बढ़ने वाली; **सम्भावनम्**—जिससे; **तव**—आपकी; **परिव्रढ़िम**—सर्वोच्चता की; **स्वभावम्**—स्वभाव; **माया-बलेन**—माया के बल पर; **भवता**—आपका; **अपि**—यद्यपि; **निगुह्यमानम्**—छुपा हुआ; **पश्यन्ति**—वे देखते हैं; **केचित्**—कुछ; **अनिशम्**—सदा; **त्वत्**—आपको; **अनन्य-भावाः**—जो अनन्य भाव से समर्पित हैं।

अनुवाद

"हे प्रभु, भौतिक प्रकृति के भीतर हर वस्तु काल, देश तथा विचार से सीमित है। फिर भी आपके गुण अद्वितीय तथा असीम होने से ऐसी सीमाओं से सदैव परे होते हैं। कभी-कभी आप इन गुणों को अपनी ही शक्ति से ढक लेते हैं, फिर भी आपके अनन्य भक्त हर परिस्थिति में आपका दर्शन पाने में समर्थ हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक भी यामुनाचार्य कृत *स्तोत्र-रत्न* (१३) से लिया गया है। माया के प्रभाव से आवृत प्रत्येक वस्तु देश, काल तथा विचार की सीमाओं में बँधी है। यहाँ तक कि बड़ी से बड़ी अभिव्यक्ति जिसकी हम कल्पना कर सकते हैं, अर्थात् आकाश की भी सीमाएँ हैं। किन्तु प्रामाणिक शास्त्रों से यह स्पष्ट है कि आकाश से परे भी सात आवरण हैं और इनमें से हर एक अपने पूर्ववर्ती

आवरण से १० गुना अधिक मोटा होता जाता है। आवरण की ये परतें विस्तृत हैं, किन्तु आकाश सीमित है, चाहे आवरण हों या नहीं। स्थान तथा काल विषयक हमारी चिन्तन-शक्ति भी सीमित है। काल शाश्वत है; हम करोड़ों तथा अरबों वर्षों की कल्पना कर सकते हैं, किन्तु वह भी काल के विस्तार का अपर्याप्त अनुमान होगा। अतएव हमारी अपूर्ण इन्द्रियाँ न तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की महानता के विषय में सोच सकती हैं, न ही हम उन्हें काल या अपनी चिन्तन-शक्ति की सीमाओं में बाँध सकते हैं। तदनुसार उनकी स्थिति *उल्लंघित* शब्द से वर्णित की जाती है। वे देश, काल तथा विचार से परे हैं। यद्यपि वे उन सबके भीतर प्रतीत होते हैं, किन्तु भगवान् उनसे परे रहते हैं। जहाँ भगवान् का दिव्य अस्तित्व देश, काल तथा विचार से छिप जाता है, वहीं भगवान् के शुद्ध भक्त उन्हें देश, काल तथा विचार से परे उनके साकार रूप में देख सकते हैं। दूसरे शब्दों में, यद्यपि भगवान् सामान्य व्यक्तियों की आँखों से नहीं दिखते, किन्तु जो लोग अपनी दिव्य भक्ति के कारण इन आवरणों से परे हैं, वे उन्हें देख सकते हैं।

सूर्य बादल से आच्छादित हुआ मालूम पड़ सकता है, किन्तु वास्तव में ये तो बादल के नीचे खड़े तुच्छ मानव की आँखें हैं, जो आच्छादित हैं, न कि सूर्य। यदि यही तुच्छ मानव हवाई जहाज से बादल के ऊपर जाये, तो वह सूर्य तथा धूप को बिना अवरोध के देख सकता है। इसी प्रकार, यद्यपि माया का आवरण प्रबल होता है, किन्तु *भगवद्गीता* (७.१४) में भगवान् कहते हैं :

दैवी ह्येषागुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

"मेरी यह दैवी शक्ति, जो भौतिक प्रकृति के तीन गुणों से बनी है, उसे जीत पाना अत्यन्त कठिन है। किन्तु जो लोग मेरी शरण में आ जाते हैं, वे सरलता से इसके पार जा सकते हैं।" भ्रामक शक्ति माया के प्रभाव को पार कर पाना अत्यन्त कठिन है, किन्तु जो लोग भगवान् के चरणकमलों को पकड़ने के लिए दृढ़संकल्प हैं, वे माया की पकड़ से मुक्त हो जाते हैं। इसलिए शुद्ध भक्त पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को समझ सकते हैं, किन्तु असुरगण अपने दुष्ट स्वभाव के

कारण अनेक शास्त्रों एवं ईश्वर के असामान्य कार्यकलापों को देखते हुए भी भगवान् को समझ नहीं सकते।

অসুর-স্বভাবে কৃষ্ণে কভু নাহি জানে ।
লুকাইতে নারে কৃষ্ণ ভক্ত-জন-স্থানে ॥৯০॥

असुर-स्वभावे कृष्णे कभु नाहि जाने ।
लुकाइते नारे कृष्ण भक्त-जन-स्थाने ॥ ९० ॥

असुर-स्वभावे—आसुरी स्वभाव वाले; **कृष्णे**—भगवान् कृष्ण; **कभु**—कभी भी; **नाहि**—नहीं; **जाने**—जानते; **लुकाइते**—छुपना; **नारे**—सक्षम नहीं; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **भक्त-जन**—शुद्ध भक्तों के; **स्थाने**—स्थान पर।

अनुवाद

जो आसुरी स्वभाव के हैं, वे कभी भी कृष्ण को नहीं जान सकते, किन्तु कृष्ण अपने शुद्ध भक्तों से अपने आपको छिपा नहीं पाते।

तात्पर्य

जो लोग रावण तथा हिरण्यकशिपु की तरह आसुरी स्वभाव बना लेते हैं, वे ईश्वर की सत्ता को ललकारने के कारण कभी भी भगवान् कृष्ण को नहीं जान सकते। किन्तु श्रीकृष्ण अपने शुद्ध भक्तों से अपने आपको कभी नहीं छिपा सकते।

দ্বৌ ভূত-সর্গৌ লোকেঽস্মিন্দৈব আসুর এব চ ।
বিষ্ণু-ভক্তঃ স্মৃতো দৈব আসুরস্তদ্বিপর্যয়ঃ ॥৯১॥

द्वौ भूत-सर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च ।
विष्णु-भक्तः स्मृतो दैव आसुरस्तद्विपर्ययः ॥ ९१ ॥

द्वौ—दो; **भूत**—जीवों का; **सर्गौ**—प्रवृत्ति, झुकाव; **लोके**—विश्व में; **अस्मिन्**—इसमें; **दैवः**—ईश्वरीय; **आसुरः**—आसुरी; **एव**—निश्चित रूप से; **च**—तथा; **विष्णु-भक्तः**—भगवान् विष्णु का भक्त; **स्मृतः**—याद किया जाता है; **दैवः**—ईश्वरीय; **आसुरः**—आसुरी; **तत्-विपर्ययः**—उसका विपरीत।

अनुवाद

"इस भौतिक संसार में दो प्रकार के लोग होते हैं। एक तो वे जो

आसुरी हैं और दूसरे वे जो दैवी हैं। भगवान् विष्णु के भक्त दैवी हैं, किन्तु जो इनके सर्वथा विपरीत हैं, वे असुर कहलाते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक *पद्म-पुराण* का है। *विष्णुभक्त* अर्थात् कृष्णभावनाभावित भक्त *देव* कहलाते हैं। नास्तिक लोग जो ईश्वर में विश्वास नहीं करते या स्वयं को ईश्वर घोषित करते हैं, वे *असुर* कहलाते हैं। असुरगण सदैव नास्तिक भौतिकतावादी कार्यों में लगे रहते हैं और भौतिक संसाधनों को इन्द्रियतृप्ति के कार्यों में प्रयुक्त करने की विधियाँ खोजते रहते हैं। *विष्णुभक्त* अर्थात् कृष्णभावनाभावित भक्त भी सक्रिय रहते हैं, किन्तु उनका लक्ष्य भक्ति द्वारा पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को तुष्ट करना होता है। ऊपर से ये दोनों श्रेणी के लोग एक ही दिशा में कार्य करते प्रतीत हो सकते हैं, किन्तु चेतना में अन्तर होने के कारण उनके प्रयोजन एक-दूसरे के सर्वथा विपरीत रहते हैं। असुरगण निजी इन्द्रियतृप्ति के लिए कार्य करते हैं, जबकि भक्तगण भगवान् की तुष्टि के लिए कार्य करते हैं। दोनों ही परिश्रम करते हैं, किन्तु उनके उद्देश्य भिन्न भिन्न होते हैं।

कृष्णभावनामृत आन्दोलन देवों या भक्तों के लिए है। असुर न तो कृष्णभावनाभावित कार्यों में सम्मिलित हो सकते हैं, न कृष्णभावनाभावित भक्त आसुरी कार्यों में सम्मिलित हो सकते हैं अथवा इन्द्रियतृप्ति के लिए कुत्तों तथा बिल्लियों की तरह कार्य कर सकते हैं। कृष्णभावनाभावित भक्तों को ऐसे कार्य तनिक भी नहीं भाते। भक्तगण जीवन की उतनी ही आवश्यकताओं को स्वीकार करते हैं, जितने से वे कृष्णभावनामृत में कार्य करने के लिए सशक्त रह सकें। उनकी शेष शक्ति कृष्णभावनामृत को विकसित करने में खर्च होती है, जिसके द्वारा वे सदैव, यहाँ तक कि अन्तिम समय में भी, कृष्ण का चिन्तन करते हुए भगवद्धाम वापस जा सकें।

आचार्य गोसाञि प्रभुर भक्त-अवतार ।
कृष्ण-अवतार-हेतु याँहार हुङ्कार ॥ ९२॥

आचार्य्य गोसाञि प्रभुर भक्त-अवतार ।
कृष्ण-अवतार-हेतु याँहार हुङ्कार ॥ ९२ ॥

आचार्य्य गोसाञि—अद्वैताचार्य गोसांइ; **प्रभुर**—भगवान् के; **भक्त-अवतार**—भक्त के अवतार; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण के; **अवतार**—अवतार का; **हेतु**—कारण; **याँहार**—जिनकी; **हुङ्कार**—ऊँची गर्जना।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य गोस्वामी भक्त के रूप में भगवान् के अवतार हैं। उनकी ऊँची गर्जना से ही कृष्ण अवतरित हुए थे।

कृष्ण यदि पृथिवीते करेन अवतार ।
प्रथमे करेन गुरु-वर्गेर सञ्चार ॥ ९३ ॥

कृष्ण यदि पृथिवीते करेन अवतार ।
प्रथमे करेन गुरु-वर्गेर सञ्चार ॥ ९३ ॥

कृष्ण—भगवान् कृष्ण; **यदि**—यदि; **पृथिवीते**—पृथ्वी पर; **करेन**—करते हैं; **अवतार**—अवतार; **प्रथमे**—पहले; **करेन**—करते हैं; **गुरु-वर्गेर**—आदरणीय गुरूवर्ग का; **सञ्चार**—अवतार।

अनुवाद

जब भी श्रीकृष्ण इस धरा पर अवतरित होना चाहते हैं, तब सर्वप्रथम वे अपने पूज्य गुरुवर्गों को अवतरित कराते हैं।

पिता माता गुरु आदि यत मान्य-गण ।
प्रथमे करेन सबार पृथिवीते जनम ॥ ९४ ॥

पिता माता गुरु आदि यत मान्य-गण ।
प्रथमे करेन सबार पृथिवीते जनम ॥ ९४ ॥

पिता—पिता; **माता**—माता; **गुरु**—गुरु; **आदि**—आदि; **यत**—सब; **मान्य-गण**—आदरणीय सदस्य; **प्रथमे**—पहले; **करेन**—वे करते हैं; **सबार**—सबका; **पृथिवीते**—पृथ्वी पर; **जनम**—जन्म।

अनुवाद

इस प्रकार सर्वप्रथम पृथ्वी पर आदरणीय लोगों यथा उनके पिता, माता तथा गुरु का जन्म होता है।

माधव-ईश्वर-पुरी, शची, जगन्नाथ ।
अद्वैत आचार्य प्रकट हैला सेई साथ ॥९५॥

माधव-ईश्वर-पुरी, शची, जगन्नाथ ।
अद्वैत आचार्य्य प्रकट हैला सेइ साथ ॥ ९५ ॥

माधव—माधवेन्द्र पुरी; **ईश्वर-पुरी**—ईश्वर पुरी; **शची**—शचीमाता; **जगन्नाथ**—जगन्नाथ मिश्र; **अद्वैत आचार्य्य**—अद्वैताचार्य; **प्रकट**—प्रकट; **हैला**—हुए; **सेइ**—यह; **साथ**—सहित।

अनुवाद

माधवेन्द्र पुरी, ईश्वर पुरी, श्रीमती शचीमाता तथा श्रील जगन्नाथ मिश्र—ये सभी श्री अद्वैत आचार्य के साथ साथ प्रकट हुए।

तात्पर्य

जब भी पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अपने मानव रूप में अवतरित होते हैं, तो वे उसके पूर्व अपने भक्तों को भेज देते हैं, जो उनके पिता, गुरु तथा संगियों के रूप में नाना प्रकार की भूमिका ग्रहण करते हैं। ऐसे महापुरुष पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अवतरण के पूर्व प्रकट होते हैं। श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव के पूर्व उनके भक्त श्री माधवेन्द्र पुरी, उनके गुरु श्री ईश्वर पुरी, उनकी माता श्रीमती शचीदेवी, उनके पिता श्री जगन्नाथ मिश्र और श्री अद्वैत आचार्य प्रकट हो चुके थे।

प्रकटिया देखे आचार्य सकल संसार ।
कृष्ण-भक्ति गन्ध-हीन विषय-व्यवहार ॥९६॥

प्रकटिया देखे आचार्य्य सकल संसार ।
कृष्ण-भक्ति गन्ध-हीन विषय-व्यवहार ॥ ९६ ॥

प्रकटिया—प्रकट होकर; **देखे**—उन्होंने देखा; **आचार्य्य**—अद्वैताचार्य; **सकल**—सब; **संसार**—भौतिक संसार; **कृष्ण-भक्ति**—भगवान् कृष्ण की भक्ति; **गन्ध-हीन**—बिना किसी चिह्न के; **विषय**—विषयों के; **व्यवहार**—व्यवहार।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने प्रकट होने के बाद देखा कि संसार श्रीकृष्ण की भक्ति से विहीन है, क्योंकि लोग भौतिक व्यापारों में व्यस्त थे।

কেহ পাপে, কেহ পুণ্যে করে বিষয়-ভোগ ।
ভক্তি-গন্ধ নাহি, যাতে যায় ভব-রোগ ॥৯৭॥

কেহ পাপে, কেহ পুণ্যে করে বিষয়-ভোগ ।
ভক্তি-গন্ধ নাহি, য়াতে য়ায় ভব-রোগ ॥ ৯৭॥

কেহ—कोई; **পাপে**—पाप कर्मों में; **কেহ**—कोई; **পুণ্যে**—पुण्य कर्मों में; **করে**—करता है; **বিষয়**—इन्द्रिय के विषयों में; **ভোগ**—भोग; **ভক্তি-গন্ধ**—भक्ति का चिह्न; **নাহি**—नहीं; **য়াতে**—जिससे; **য়ায়**—चला जाता है; **ভব-রোগ**—भवरोग।

अनुवाद

प्रत्येक व्यक्ति, चाहे पापवश हो या पुण्यवश, भौतिक भोग में लगा हुआ था। कोई भी भगवान् की दिव्य सेवा में रुचि नहीं रखता था, जिससे जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा प्राप्त हो सकता है।

तात्पर्य

अद्वैत आचार्य ने सम्पूर्ण जगत् को भौतिक पुण्य तथा पाप के व्यापारों में व्यस्त देखा। भक्ति या कृष्णभावनामृत का कहीं कोई नामोनिशान नहीं था। सच्चाई यह है कि इस भौतिक जगत् में कृष्णभावनामृत के अतिरिक्त किसी भी वस्तु का अभाव नहीं है। भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति भगवान् की कृपा से हो जाती है। हाँ, कभी-कभी हमें अपने कुप्रबन्ध के कारण अभाव का अनुभव होता है, किन्तु असली समस्या यह है कि लोग अब कृष्णभावनामृत के सम्पर्क में नहीं रहे। हर व्यक्ति इन्द्रियतृप्ति में तो लगा है, किन्तु उसके पास अपनी वास्तविक समस्याओं—जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधि का अन्तिम समाधान खोज निकालने की कोई योजना नहीं है। ये चार भौतिक कष्ट *भवरोग* अर्थात् भौतिक रोग कहलाते हैं। ये केवल कृष्णभावनामृत द्वारा ही ठीक हो सकते हैं। अतएव मानव समाज के लिए कृष्णभावनामृत सब से बड़ा वरदान है।

লোক-গতি দেখি' আচার্য করুণ-হৃদয় ।
বিচার করেন, লোকের কৈছে হিত হয় ॥৯৮॥

লোক-গতি দেখি' আচার্য্য করুণ-হৃদয় ।
বিচার করেন, লোকের কৈছে হিত হয় ॥ ৯৮॥

लोक-गति—लोकगति; **देखि'**—देखकर; **आचार्य्र**—अद्वैताचार्य; **करुण-हृदय**—करुण हृदय वाले; **विचार करेन**—विचार करते हैं; **लोकेर**—विश्व का; **कैछे**—कैसे; **हित**—हित; **हय**—होगा।

अनुवाद

संसार के कार्यकलापों को देखकर आचार्य को दया आई और वे विचार करने लगे कि वे जनता का हित किस तरह करें।

तात्पर्य

जनता के कल्याण हेतु इस प्रकार की गम्भीर रुचि मनुष्य को प्रामाणिक आचार्य बनाती है। आचार्य कभी भी अपने अनुयायियों का शोषण नहीं करता। चूँकि आचार्य भगवान् का विश्वस्त सेवक होता है, अतएव उसका हृदय मनुष्यों के कष्टों के प्रति करुणा से ओतप्रोत रहता है। वह जानता है कि सारे कष्ट भगवद्भक्ति के अभाव के कारण हैं, अतएव वह लोगों के कार्यों को बदलने के लिए सदैव मार्ग खोजता रहता है, जिससे उन्हें भक्ति प्राप्त हो सके। यही आचार्य की योग्यता है। यद्यपि श्री अद्वैत प्रभु स्वयं यह कार्य कर सकने के लिए समर्थ थे, लेकिन एक विनीत सेवक की तरह उन्होंने सोचा कि भगवान् के साक्षात् प्रकट हुए बिना समाज की पतित अवस्था को सुधारा नहीं जा सकता।

माया के कठोर बन्धन में इस भौतिक जगत् के प्रथम श्रेणी के बन्दी भ्रमवश अपने आपको सुखी मानते हैं, क्योंकि वे धनी, शक्तिशाली, साधनसम्पन्न हैं। ये मूर्ख प्राणी यह भी नहीं जानते कि वे भौतिक प्रकृति के हाथों में केवल कठपुतली के समान हैं और किसी भी क्षण भौतिक प्रकृति के निर्दय षड्यंत्र उनके सारे ईश्वरविमुख कार्यों की योजनाओं को धूल में मिला सकते हैं। ऐसे मूर्ख बन्दी यह भी नहीं देख पाते कि वे कृत्रिम साधनों से अपनी स्थिति को कितना ही क्यों न सुधार लें, किन्तु बारम्बार जन्म, मृत्यु, व्याधि तथा वृद्धावस्था की विपत्तियाँ सदा उनके वश के बाहर हैं। मूर्ख होने के कारण वे जीवन की इन प्रमुख समस्याओं की उपेक्षा करते हुए मिथ्या बातों में लगे रहते हैं, जिनसे उनकी वास्तविक समस्याओं का समाधान नहीं मिल पाता। वे जानते हैं कि वे मृत्यु या रोग अथवा वृद्धावस्था का कष्ट नहीं भोगना

चाहते, किन्तु माया के वशीभूत होने के कारण वे नितान्त लापरवाह रहते हैं और इन समस्याओं का समाधान करने के लिए कुछ भी नहीं करते। इसे *माया* कहते हैं। माया द्वारा वशीभूत हुए लोग मृत्यु के बाद विस्मृति के गर्त में चले जाते हैं और अपने *कर्म* के अनुसार अगले जन्म में कुत्ता या देवता बनते हैं, यद्यपि अधिकांश कुत्ते ही बनते हैं। अगले जन्म में देवता बनने के लिए उन्हें पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की भक्ति करनी आवश्यक है, अन्यथा प्रकृति के नियमानुसार उनका कुत्ता या सुअर बनना निश्चित है।

तृतीय श्रेणी के बन्दी, भौतिक दृष्टि से कम ऐश्वर्यवान होने के कारण प्रथम श्रेणी के बन्दियों का अनुकरण करने का प्रयास करते हैं, क्योंकि उन्हें भी अपने बन्दी होने के विषय में वास्तविक ज्ञान नहीं होता। इस तरह वे भी भ्रामक भौतिक प्रकृति द्वारा दिग्भ्रमित हो जाते हैं। किन्तु यह आचार्य का कार्य है कि वह प्रथम तथा तृतीय श्रेणी के बन्दियों के कार्यों को बदल दे, जिससे उन्हें वास्तविक लाभ हो। इस उद्यम के कारण वह भगवान् का अत्यन्त प्रिय भक्त बन जाता है। भगवान् *भगवद्गीता* में स्पष्ट रूप से कहते हैं कि मानव समाज में भक्त से बढ़कर उन्हें अन्य कोई प्रिय नहीं है, क्योंकि वह जगत् के वास्तविक लाभ के लिए ईश्वर के सन्देश का प्रचार करने के उपायों की खोज करते हुए भगवान् की सेवा में सर्वदा लगा रहता है। कलियुग के तथाकथित आचार्य अपने अनुयायियों के कष्टों को कम करने के लिए उतना चिन्तित नहीं रहते, जितना कि वे उनके संसाधनों का दोहन करने में लगे रहते हैं। किन्तु एक आदर्श आचार्य के रूप में श्री अद्वैत प्रभु संसार की दशा को सुधारने के प्रति चिन्तित थे।

আপনি শ্রী-কৃষ্ণ যদি করেন অবতার ।
আপনে আচরি' ভক্তি করেন প্রচার ॥৯৯॥

आपनि श्री-कृष्ण यदि करेन अवतार ।
आपने आचरि' भक्ति करेन प्रचार ॥ ९९॥

आपनि—स्वयं; **श्री-कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **यदि**—यदि; **करेन**—वे करते हैं; **अवतार**—अवतार; **आपने**—अपना; **आचरि'**—अभ्यास करना; **भक्ति**—भक्ति; **करेन**—करते हैं; **प्रचार**—प्रचार।

अनुवाद

(अद्वैत आचार्य ने सोचा :) "यदि श्रीकृष्ण अवतार के रूप में प्रकट हों, तो वे स्वयं अपने व्यक्तिगत उदाहरण द्वारा भक्ति का प्रचार कर सकते हैं।

नाम विनु कलि-काले धर्म नाहि आर ।
कलि-काले कैछे हबे कृष्ण अवतार ॥ १००॥

नाम विनु कलि-काले धर्म नाहि आर ।
कलि-काले कैछे हबे कृष्ण अवतार ॥ १००॥

नाम विनु—पवित्र नाम के अतिरिक्त; **कलि-काले**—कलियुग में; **धर्म**—धर्म; **नाहि**—नहीं है; **आर**—अन्य; **कलि-काले**—कलियुग में; **कैछे**—कैसे; **हबे**—होगा; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण का; **अवतार**—अवतार।

अनुवाद

"इस कलियुग में भगवान् के पवित्र नाम के कीर्तन के अतिरिक्त अन्य कोई धर्म नहीं है, लेकिन इस युग में भगवान् किस तरह अवतार लेंगे?"

शुद्ध-भावे करिब कृष्णेर आराधन ।
निरन्तर सदैन्ये करिब निवेदन ॥ १०१॥

शुद्ध-भावे करिब कृष्णेर आराधन ।
निरन्तर सदैन्ये करिब निवेदन ॥ १०१॥

शुद्ध-भावे—शुद्ध मनोभाव से; **करिब**—मैं करूँगा; **कृष्णेर**—भगवान् कृष्ण की; **आराधन**—पूजा; **निरन्तर**—निरन्तर; **स-दैन्ये**—विनम्र भाव से; **करिब**—मैं करूँगा; **निवेदन**—निवेदन।

अनुवाद

"मैं शुद्ध मन से कृष्ण की पूजा करूँगा। मैं उनसे निरन्तर विनीत भाव से निवेदन करूँगा।

আনিয়া কৃষ্ণেরে করোঁ কীর্তন সঞ্চার ।
তবে সে 'অদ্বৈত' নাম সফল আমার ॥১০২॥

आनिया कृष्णेरे करों कीर्तन सञ्चार ।
तबे से 'अद्वैत' नाम सफल आमार ॥१०२॥

आनिया—लाकर; **कृष्णेरे**—भगवान् कृष्ण; **करों**—मैं करता हूँ; **कीर्तन**—कीर्तन; **सञ्चार**—आरम्भ; **तबे**—तब; **से**—यह; **अद्वैत**—अद्वैत; **नाम**—नाम; **स-फल**—सफल; **आमार**—मेरा।

अनुवाद

"मेरा 'अद्वैत' नाम तभी सार्थक होगा, जब मैं कृष्ण को पवित्र नाम-संकीर्तन आन्दोलन का प्रवर्तन करने के लिए प्रेरित कर सकूँगा।"

तात्पर्य

अद्वैतवादी मायावादी दार्शनिक, जो झूठे ही विश्वास करता है कि वह भगवान् से अभिन्न है, अद्वैत प्रभु की तरह भगवान् से प्रार्थना नहीं कर सकता। अद्वैत प्रभु भगवान् से अभिन्न हैं, किन्तु वे पूर्णांश के रूप में निरन्तर भगवान् की सेवा करते हैं, भगवान् में समा नहीं जाते। मायावादियों के लिए यह अचिन्त्य है, क्योंकि वे भौतिक इन्द्रियानुभूति के सन्दर्भ में सोचते हैं और यह सोचते हैं कि अद्वैतवाद के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य अपनी पृथक् पहचान खो दे। किन्तु इस श्लोक से यह स्पष्ट है कि अद्वैत प्रभु अपनी पृथक् पहचान बनाये रखकर भी भगवान् से अभिन्न हैं।

श्री चैतन्य महाप्रभु ने अचिन्त्य-भेदाभेद तत्त्व—एक साथ भगवान् से एकरूपता तथा भिन्नता—का प्रचार किया। चिन्तनीय द्वैत (भेद) तथा अद्वैत (अभेद) अपूर्ण इन्द्रियों की अनुभूतियाँ हैं, जो दिव्यता तक नहीं पहुँच पातीं, क्योंकि दिव्यता सीमित शक्ति की अनुभूति से परे है। किन्तु अद्वैत प्रभु के कार्य अचिन्त्य अभेद का यथार्थ प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। अतएव जो कोई श्री अद्वैत प्रभु की शरण में जाता है, वह सरलता से अचिन्त्य-भेदाभेद दर्शन को समझ सकता है।

কৃষ্ণ বশ করিবেন কোনারাধনে ।
বিচারিতে এক শ্লোক আইল তাঁর মনে ॥১০৩॥

कृष्ण वश करिबेन कोनाराधने ।
विचारिते एक श्लोक आइल ताँर मने ॥ १०३॥

कृष्ण—भगवान् कृष्ण; **वश करिबेन**—वश में करूँगा; **कोन् आराधने**—किस पूजा के; **विचारिते**—विचार करते समय; **एक**—एक; **श्लोक**—श्लोक; **आइल**—आया; **ताँर**—उनके; **मने**—मन में।

अनुवाद

जब वे पूजा द्वारा कृष्ण को वश में करने के विषय में सोच रहे थे, तब उनके मन में निम्नलिखित श्लोक आया।

तुलसी-दल-मात्रेण जलस्य चुलुकेन वा ।
विक्रीणीते स्वमात्मानं भक्तेभ्यो भक्त-वत्सलः ॥ १०४॥

तुलसी-दल-मात्रेण जलस्य चुलुकेन वा ।
विक्रीणीते स्वमात्मानं भक्तेभ्यो भक्त-वत्सलः ॥ १०४॥

तुलसी—तुलसी का; **दल**—पत्ता, दल; **मात्रेण**—मात्र से; **जलस्य**—जल का; **चुलुकेन**—हथेली से; **वा**—तथा; **विक्रीणीते**—बेचते हैं; **स्वम्**—अपने; **आत्मानम्**—स्वयं को; **भक्तेभ्यः**—भक्तों को; **भक्त-वत्सलः**—भगवान् कृष्ण जो भक्तों को प्रिय हैं।

अनुवाद

"अपने भक्तों के प्रति अत्यन्त वत्सल श्रीकृष्ण अपने आपको उस भक्त के हाथ बेच देते हैं, जो उन्हें केवल तुलसीदल तथा एक अंजलिभर जल अर्पित करता है।"

तात्पर्य

यह श्लोक *गौतमीय तन्त्र* से लिया गया है।

এই শ্লোকার্থ আচার্য করেন বিচারণ ।
কৃষ্ণকে তুলসী-জল দেয় যেই জন ॥ ১০৫॥
তার ঋণ শোধিতে কৃষ্ণ করেন চিন্তন—।
'জল-তুলসীর সম কিছু ঘরে নাহি ধন' ॥ ১০৬॥

এই শ্লোকার্থ আচার্য্য করেন বিচারণ ।
কৃষ্ণকে তুলসী-জল দেয় যেই জন ॥ ১০৫॥

तार ऋण शोधिते कृष्ण करेन चिन्तन—।
'जल-तुलसीर सम किछु घरे नाहि धन' ॥ १०६ ॥

एइ—यह; **श्लोक**—श्लोक का; **अर्थ**—अर्थ; **आचार्य्य**—अद्वैताचार्य; **करेन**—करते हैं; **विचारण**—सोचकर; **कृष्णके**—भगवान् कृष्ण को; **तुलसी-जल**—तुलसी और जल; **देय**—देते हैं; **येइ जन**—वह व्यक्ति जो; **तार**—उनको; **ऋण**—ऋण; **शोधिते**—अदा करना; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **करेन**—करते हैं; **चिन्तन**—चिन्तन; **जल-तुलसीर सम**—जल एवं तुलसी के समान; **किछु**—कोई; **घरे**—घर में; **नाहि**—नहीं है; **धन**—धन, सम्पत्ति।

अनुवाद

अद्वैत आचार्य ने इस श्लोक के अर्थ पर इस प्रकार विचार किया : "जो कृष्ण को तुलसीदल तथा जल अर्पित करता है, उसके ऋण को चुकाने की कोई विधि न पाकर भगवान् कृष्ण सोचते हैं, 'मेरे पास ऐसी कोई सम्पत्ति नहीं जो तुलसीदल तथा जल की समता कर सके।'

তবে আত্মা বেচি' করে ঋণের শোধন ।
এত ভাবি' আচার্য করেন আরাধন ॥ ১০৭ ॥

तबे आत्मा वेचि' करे ऋणेर शोधन ।
एत भावि' आचार्य्य करेन आराधन ॥ १०७ ॥

तबे—तब; **आत्मा**—स्वयं; **वेचि'**—बेचकर; **करे**—करते हैं; **ऋणेर**—ऋण की; **शोधन**—भुगतान; **एत**—इस प्रकार; **भावि'**—सोचकर; **आचार्य्य**—अद्वैताचार्य; **करेन**—करते हैं; **आराधन**—पूजा।

अनुवाद

"इस प्रकार भगवान् अपने आपको भक्त के हाथ अर्पित करके अपना ऋण चुकाते हैं।" इस तरह विचार करके आचार्य ने भगवान् की आराधना प्रारम्भ कर दी।

तात्पर्य

भक्ति द्वारा भगवान् कृष्ण को एक तुलसीदल तथा थोड़े से जल से सरलतापूर्वक प्रसन्न किया जा सकता है। जैसाकि *भगवद्गीता* (९.२६) में भगवान् कहते हैं कि यदि कोई भक्तिपूर्वक उन्हें एक पत्र, एक फूल, एक फल या कुछ जल अर्पित करता है (*पत्रं पुष्पं फलं तोयम्*), तो वे अत्यन्त प्रसन्न

हो जाते हैं। वे अपने भक्तों की सेवा विश्वभर में कहीं भी स्वीकार करते हैं। संसार के किसी भी भाग में गरीब से गरीब भक्त भी एक छोटा-सा फूल, फल या पत्र तथा थोड़ा सा जल प्राप्त कर सकता है और यदि इन्हें, अथवा विशेष रूप से तुलसीदल तथा गंगाजल, कृष्ण को भक्तिपूर्वक अर्पित किया जाता है, तो वे अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। कहा जाता है कि कृष्ण ऐसी भक्ति से इतने प्रसन्न हो जाते हैं कि इसके बदले में वे अपने भक्त को आत्मसमर्पण कर देते हैं। श्रील अद्वैत आचार्य इस तथ्य को जानते थे, इसलिए उन्होंने तुलसीदल तथा गंगाजल से भगवान् की पूजा करके उनसे अवतरित होने के लिए आवाहन करने का निश्चय किया।

गङ्गा-जल, तुलसी-मञ्जरी अनुक्षण ।
कृष्ण-पाद-पद्म भावि' करे समर्पण ॥ १०८ ॥

गङ्गा-जल, तुलसी-मञ्जरी अनुक्षण ।
कृष्ण-पाद-पद्म भावि' करे समर्पण ॥ १०८ ॥

गङ्गा-जल—गंगाजल; **तुलसी-मञ्जरी**—तुलसी मंजरी; **अनुक्षण**—लगातार; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण के; **पाद-पद्म**—चरणकमल; **भावि'**—का चिन्तन करते हुए; **करे**—करते हैं; **समर्पण**—समर्पण।

अनुवाद

श्रीकृष्ण के चरणकमलों का चिन्तन करते हुए उन्होंने गंगाजल में तुलसी मंजरियाँ मिलाकर निरन्तर अर्पित कीं।

कृष्णेर आह्वान करे करिया हुङ्कार ।
ए-मते कृष्णेरे कराइल अवतार ॥ १०९ ॥

कृष्णेर आह्वान करे करिया हुङ्कार ।
ए-मते कृष्णेरे कराइल अवतार ॥ १०९ ॥

कृष्णेर—भगवान् कृष्ण का; **आह्वान**—आवाहन; **करे**—करते हैं; **करिया**—करके; **हुङ्कार**—ऊँचे आवाज से; **ए-मते**—इस प्रकार; **कृष्णेरे**—भगवान् कृष्ण; **कराइल**—करवाया; **अवतार**—अवतार।

अनुवाद

उन्होंने जोर-जोर से श्रीकृष्ण से विनती की और इस तरह कृष्ण का अवतरित होना सम्भव हुआ।

চৈতন্যের অবতারে এই মুখ্য হেতু ।
ভক্তের ইচ্ছায় অবতরে ধর্ম-সেতু ॥ ১১০ ॥

চৈতন্যের অবতারে এइ মুখ্য হেতু ।
ভক্তের ইচ্ছায় অবতরে ধর্ম-সেতু ॥ ১১০ ॥

चैतन्येर—चैतन्य महाप्रभु के; **अवतारे**—अवतार में; **एइ**—यह; **मुख्य**—प्रमुख; **हेतु**—कारण; **भक्तेर**—भक्त की; **इच्छाय**—इच्छा से; **अवतरे**—वे अवतरित होते हैं; **धर्म-सेतु**—धर्म के संरक्षक।

अनुवाद

अतएव श्री चैतन्य के अवतार का मुख्य कारण अद्वैत आचार्य की यह विनती है। धर्म के संरक्षक भगवान् अपने भक्त की इच्छा से प्रकट होते हैं।

त्वं भक्ति-योग-परिभावित-हृत्सरोज
आस्से श्रुतेक्षित-पथो ननु नाथ पुंसाम् ।
यद् यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति
तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय ॥ १११ ॥

त्वं भक्ति-योग-परिभावित-हृत्सरोज
आस्से श्रुतेक्षित-पथो ननु नाथ पुंसाम् ।
यद् यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति
तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय ॥ १११ ॥

त्वम्—आप; **भक्ति-योग**—भक्ति योग से; **परिभावित**—परिपूर्ण; **हृत्**—हृदय के; **सरोजे**—कमल पर; **आस्से**—निवास करते हैं; **श्रुत**—सुना हुआ; **ईक्षित**—देखा हुआ; **पथः**—जिनका मार्ग; **ननु**—निश्चित रूप से; **नाथ**—हे नाथ; **पुंसाम्**—भक्तों से; **यत् यत्**—जो जो; **धिया**—मन से; **ते**—वे; **उरु-गाय**—हे भगवान्, जो उत्तम विधियों से महिमान्वित हैं; **विभावयन्ति**—का ध्यान करते हैं; **तत् तत्**—वह वह; **वपुः**—रूप; **प्रणयसे**—आप प्रकट करते हैं; **सत्**—अपने भक्तों को; **अनुग्रहाय**—अनुग्रह करने के लिए।

अनुवाद

"हे प्रभु, आप अपने शुद्ध भक्तों की दृष्टि तथा श्रुति में सदैव वास करते हैं। आप उनके कमल सदृश हृदयों में भी निवास करते हैं, जो भक्ति द्वारा निर्मल हो चुके होते हैं। हे भगवान्, आप उत्कृष्ट स्तुतियों से महिमान्वित होते हैं। आपके भक्त आपके जिन सनातन रूपों में आपका स्वागत करते हैं, उन रूपों में प्रकट होकर आप उन पर विशेष अनुग्रह करते हैं।"

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (३.९.११) में आया है। यह एक स्तुति है, जिसमें ब्रह्माजी सृष्टि कार्य करने के लिए पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण से उनका आशीर्वाद माँगते हैं। भगवान् विषयक ज्ञान वैदिक शास्त्रों के विवरणों से प्राप्त किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, *ब्रह्म-संहिता* (५.२९) में भगवान् कृष्ण के धाम का वर्णन मिलता है, जो चिन्तामणि से बना है और जहाँ गोपबालक के रूप में भगवान् की सेवा करने के लिए लाखों लक्ष्मियाँ हैं। मायावादी लोग सोचते हैं कि भक्तों ने कृष्ण के स्वरूप की कल्पना की है, किन्तु प्रामाणिक शास्त्रों ने वास्तव में ही कृष्ण तथा उनके विविध दिव्य रूपों का वर्णन किया है।

श्रुतेक्षित-पथः में *श्रुत* शब्द से वेदों का अभिप्राय है तथा *ईक्षित* यह इंगित करता है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को समझने की विधि है वैदिक शास्त्रों का समुचित अध्ययन। भगवान् या उनके रूप के विषय में कोई कल्पना नहीं कर सकता। ऐसी कल्पना उन लोगों को मान्य नहीं है, जो ज्ञानालोक प्राप्त करने के सम्बन्ध में गम्भीर हैं। यहाँ पर ब्रह्मा कहते हैं कि वैदिक ग्रंथों के समुचित अध्ययन से कृष्ण को जाना जा सकता है। यदि कोई भगवान् के रूप, नाम, गुण, लीलाओं तथा साज-सामग्री के अध्ययन से उनके प्रति आकृष्ट हो जाता है, तो वह भक्ति कर सकता है और भगवान् का दिव्य रूप सदा के लिए उसके हृदय में अंकित हो जायेगा। जब तक भक्त वास्तव में भगवान् के लिए दिव्य प्रेम उत्पन्न नहीं कर लेता, तब तक वह अपने हृदय में भगवान् का निरन्तर चिन्तन नहीं कर सकता। भगवान् की ऐसी स्थायी स्मृति योग-विधि

की भव्य सिद्धि है, जैसाकि *भगवद्गीता* के छठे अध्याय (६.४७) में पुष्टि की गई है कि जो कोई ऐसे भाव में निमग्न रहता है, वह सर्वश्रेष्ठ योगी है। ऐसी दिव्य निमग्नता समाधि कहलाती है। जो शुद्ध भक्त पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का निरन्तर चिन्तन करता रहता है, वही भगवान् का दर्शन पाने का अधिकारी है।

उरुगाय (दिव्य स्तुतियों द्वारा जिनकी महिमा गाई जाती है, ऐसे भगवान्) के विषय में तब तक व्यक्ति कुछ नहीं कह सकता, जब तक वह आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत न हो। जैसाकि *ब्रह्म-संहिता* में पुष्टि हुई है, भगवान् के अनन्त रूप हैं (*अद्वैतम् अच्युतम् अनादिम् अनन्तरूपम्*)। भगवान् असंख्य *स्वांश* रूपों में अपना विस्तार करते हैं। जब कोई भक्त इन असंख्य रूपों के विषय में सुनकर किसी एक रूप के प्रति अनुरक्त हो जाता है और निरन्तर उसी का चिन्तन करता है, तो भगवान् उसके समक्ष उसी रूप में प्रकट होते हैं। भगवान् कृष्ण उन भक्तों को विशेष रूप से सुखकर लगने वाले हैं, जिनके हृदय में वे सदैव उपस्थित रहते हैं, क्योंकि उन भक्तों में उच्च दिव्य प्रेम रहता है।

एই শ্লোকের অর্থ কহি সঙ্ক্ষেপের সার ।
ভক্তের ইচ্ছায় কৃষ্ণের সর্ব অবতার ॥ ১১২॥

এই শ্লোকের অর্থ কহি সঙ্ক্ষেপের সার ।
ভক্তের ইচ্ছায় কৃষ্ণের সর্ব অবতার ॥ ১১২॥

এই—यह; **শ্লোকের**—श्लोक का; **অর্থ**—अर्थ; **কহি**—मैं वर्णन करता हूँ; **সঙ্ক্ষেপের**—संक्षेप में; **সার**—सार; **ভক্তের**—भक्त की; **ইচ্ছায়**—इच्छा से; **কৃষ্ণের**—भगवान् कृष्ण के; **সর্ব**—सभी; **অবতার**—अवतार।

अनुवाद

इस श्लोक का भावार्थ यह है कि भगवान् अपने शुद्ध भक्तों की इच्छा से अपने असंख्य शाश्वत रूपों में प्रकट होते हैं।

চতুর্থ শ্লোকের অর্থ হৈল সুনিশ্চিতে ।
অবতীর্ণ হৈলা গৌর প্রেম প্রকাশিতে ॥ ১১৩॥

চতুর্থ শ্লোকের অর্থ হৈল সুনিশ্চিতে ।
অবতীর্ণ হৈলা গৌর প্রেম প্রকাশিতে ॥ ১১৩॥

चतुर्थ—चौथे; **श्लोकेर**—श्लोक का; **अर्थ**—अर्थ; **हैल**—था; **सु-निश्चिते**—निश्चित रूप में; **अवतीर्ण हैला**—अवतरित हुए; **गौर**—भगवान् चैतन्य महाप्रभु; **प्रेम**—ईश्वर प्रेम; **प्रकाशिते**—प्रकट करने के लिए।

अनुवाद

इस प्रकार मैंने चौथे श्लोक का अर्थ निश्चित कर दिया है। गौरांग महाप्रभु ईश्वर के अनन्य प्रेम का प्रचार करने के लिए अवतार के रूप में प्रकट हुए।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।
चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥ ११४॥

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे ग्रार आश ।
चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥ ११४॥

श्री-रूप—श्रील रूप गोस्वामी; **रघुनाथ**—श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; **पदे**—के चरणकमलों पर; **ग्रार**—जिनकी; **आश**—आशा; **चैतन्य-चरितामृत**—चैतन्य चरितामृत ग्रन्थ; **कहे**—कहता है; **कृष्ण-दास**—श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप तथा श्री रघुनाथ के चरणकमलों में प्रार्थना करते हुए, सदैव उनकी कृपा की आकांक्षा से, मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुए श्री चैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीचैतन्य-चरितामृत, आदि लीला के "श्री चैतन्य महाप्रभु के प्राकट्य के बाह्य कारण" का वर्णन करने वाले तृतीय अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।